Chap-1

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

प्रास्ताविक

यह तो एक सर्व – विदित एवम् सर्वग्राहय तथ्य है कि न केवल हिंदी साहित्य में, बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में उपन्यास विद्या का आगमन 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हुआ है। उपन्यास कथा साहित्य का प्रकार है और जहाँ तक कथा साहित्य का संबध है, प्राचीनकाल से संस्कृत साहित्य में पंचतत्र, हितोपदेश, कथा सरित सागर, दशकुमार चरित आदि के रूप में हमें वह प्राप्त होता है। किन्तु जिसे आज "उपन्यास कहा जाता है उसका उस प्राचीन संस्कृत साहित्य के कथा साहित्य से कोई विशेष तालमेल नहीं बैठता है। वस्तुतः यह विद्या अंग्रेजी के "Novel" से अवतरित हुई है। हिन्दी साहित्य में हमें उपन्यास 19 वीं शताब्दी के आठवें या नवें दशक में सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। इस प्रकार देखा जाय तो हिंदी उपन्यास विद्या का इतिहास सौ-सवा सौ वर्षों से ज्यादा नहीं है। हमारे शोधप्रबंध का संबंध हिन्दी की समकालीन बहुचर्तित उपन्यास लेखिका मैत्रेयीपुष्पा के उपन्यासों से है। इधर मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा, दो खण्ड़ों में आयी है – "कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया"। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में हमारा उपक्रम मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का अध्ययन उनकी इन दो आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में करने का रहेंगा, क्योंकि प्रत्येक रचनाकार के जीवन में जो घटित होता है, उसकी गूंज कहीं - न - कहीं उनके कृतित्व में श्रृतिगोचर होती है। अतः प्रस्तुत अध्याय में हम उपन्यास को आधुनिक संदर्भो में परिभाषित करने का प्रयत्न करेंगे। विभिन्न औपन्यासिक आलोचकों ने उपन्यास की जो नाना परिभाषाएँ दी हैं, उन पर संक्षेप में दृष्टिक्षेप किया जाएगा। अतः उपन्यास की कुछेक अंग्रेजी परिभाषाओं पर विचार करने के उपरांत हम हिन्दी आलोचकों की परिभाषाओं पर भी विचार करेंगे। जैसे-जैसे उपन्यास विद्या का विकास होता गया वैसे – वैसे उपन्यास के विभिन्न प्रकार या रूपबंध भी हमारे सामने आते गये। उन पर भी संक्षेप में विचार किया जाएगा। हमारा शोध-प्रबंध मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास से सम्बद्ध है और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास हमें 20 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उपलब्ध होते हैं।

अतः प्रारंभ से लेकर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास में आगमन तक के औपन्यासिक विकास को भी, उसके विभिन्न सोपानों को चिन्हित करने का हमारा प्रयत्न रहेगा। हिंदी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव प्रेमचंद से प्राप्त हुआ। हिंदी उपन्यास में मानव चरित्र की पहचान करानेवाले वे पहले उपन्यासकार हैं, फलतः अधिकांश औपन्यासिक आलोचकों ने हिंदी उपन्यास की विकासयात्रा को निर्देशित करते हुए उसके विभिन्न कालखण्ड़ों को उनके ही नाम से अभिहित किया है, यथा – पूर्व प्रेमचंदकाल, प्रेमचंद काल, प्रेमचंदोत्तरकाल आदि-आदि। सन् 1947 में हमारा देश स्वाधीन हुआ। यह एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना है। जिसके प्रभाव से साहित्य भी अछूता नहीं रहा है। अतः 47 के बाद के सन् 60 तक के कालखण्ड़ को स्वातंत्र्योत्तर काल कहा गया है। स्वाधीनता से हमारे देश के लोगों को बहुत बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ थीं। परंतु आज़ादी के कुछ ही वर्षों में उन अपेक्षाओं पर पानी फिर गया और हमारा लोकतंत्र और हमारे नेता प्रजा की अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरे। अतः 60 के बाद के उपन्यासों में एक विशिष्ट मोड़ आता है, जिसके कारण हिन्दी साहित्य में 60 के बाद भी सभी विद्याओं को साठोत्तरी उपन्यास, साठोत्तरी कविता, साठोत्तरी नाटक के रूप में आलोचकों ने दिखाने का प्रयत्न किया है। यह साठोत्तरी उपन्यास काल लगभग सन् 1980 या अधिक से अधिक 1985 तक माना गया है। उसके बाद इधर के 15-20 वर्षो के उपन्यास साहित्य को समकालीन उपन्यास की संज्ञा दी गयी है। जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है। हमारा प्रयास मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों को उनकी आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का है। अतः बहुत संक्षेप में हमने पुष्पाजी के उपन्यासों का ब्यौरा भी यहाँ प्रस्तुत किया है, जिससे हिंदी उपन्यास साहित्य में उसके योगदान को लक्षित किया जा सके। प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम उपर्युक्त मुद्दों की छानबीन और पड़ताल का रहेगा। प्रस्तुत अध्याय के अंत में कतिपय निष्कर्षो को रखने का भी प्रयत्न होगा। संदर्भ संकेत को सूचित करने के प्रायः दो ढ़ंग हैं। एक में संदर्भ या पाद टिप्पणी को प्रत्येक पृष्ठ के नीचे दर्ज किया जाता है। दूसरी विधि में प्रत्येक पृष्ठ के नीचे संदर्भ संकेत न देते हुए उसे अध्याय के अंत में प्रस्तुत किया जाता है। हमने अपने शोध प्रबंध में इस दूसरी विधि का अनुसरण किया है।

उपन्यास की परिभाषा :-

उपन्यास इस नये युग की नयी विद्या है । यद्यपि उसकी परिगणना कथा साहित्य के अंतर्गत होती है, और हमारा प्राचीन कथा साहित्य काफी समृद्ध और सम्पन्न है, तथापि इस नयी विद्या का उस प्राचीन कथा साहित्य से कोई विशेष निस्बत नहीं है । उपन्यास और प्राचीन कथा साहित्य में कई दृष्टियों से अंतर है । मुख्य अंतर तो यह है कि जहाँ प्राचीन साहित्य सामंतवादी समाज की देन है, वहाँ यह नव्यत्तर साहित्य विद्या आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की देन है। उसमें कथा प्रायः देवी-देवताओं, राजा-महाराजाओं, राजकुमार-राजकुमारियों तथा श्रेष्ठीजनों के आस-पास केन्द्रित होती थी ; वहाँ उपन्यास में समाज के सभी वर्ग के लोगों की उपस्थिति होती है । इस लिए तो आंग्लविवेचक राल्फफोकस महोदय ने अपने औपन्यासिक आलोचनात्मक ग्रंथ का नाम "Novel and the People" रखा है । उपन्यास मूलतः पश्चिम की देन है । वहाँ भी उसका उद्दभव "रेनेसा" के बाद ही हुआ है ।[1] यूरोप में जब गद्य तर्क-बितर्क, विमर्श आदि के उपर्युक्त हुआ तब वहाँ "Novel" का आविर्भाव हुआ । जान बनियन कृत अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास "द पिलिग्रम्स प्रोग्रेस" सन 1678 में मादाम द लफायेत कृत फ्रेंज का प्रथम उपन्यास "द प्रिन्सेस आफ क्लेबस" सन 1678 में, एरेडिश चैब कृत प्रथम रूसी उपन्यास "जर्नी फ्रोम पिट्स-बर्ग टु मोस्को" सन 1790 में जेम्स फेनीमोर-कूपर कृत प्रथम अमेरीकी उपन्यास "द पायोनियर्स" सन 1823 में प्रकाशित होता है ।[2] हमारे यहाँ 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नव जागरण के पश्चात समाज के ढाँचे में जो परिवर्तन हुए उसके परिणामस्वरूप उपन्यास का आर्विभाव हुआ, जो अंग्रेजी के "Novel" से प्रभावित है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षागुरू" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है ।[3] स्वयं लेखक ने इसे अंग्रेजी चाल की नयी पुस्तक कहा है ।[4] "परीक्षागुरू" का प्रकाशन वर्ष सन 1882 का है, अतः इधर जो नयी खोजें हुई हैं, उसके आधार पर डॉ.गणपति-चंद्रगुप्त, डॉ.सुरेश सिन्हा, डॉ.पारूकान्त देसाई आदि विद्वानों ने पंड़ित श्रद्धारामफुल्लोरी कृत "भाग्यवती" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है ।[5] अभिप्राय यह कि 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हिन्दी में उपन्यास मिलने लगा है । भारतीय भाषाओं में भी लगभग इसके कुछ वर्षो पूर्व से उपन्यास मिलते हैं । भारतीय

भाषाओं में सर्वप्रथम हमें टेकचंदठाकुर कृत "आलालेर घरेर दुलाल" नामक बंग्ला उपन्यास सन 1857 में प्राप्त होता है। उसके कुछ महीने बाद बाबा पद्मनजी कृत मराठी उपन्यास "यमुनापर्यटन" प्राप्त होता है। सन 1868 के आसपास नंदशंकर तुलजा शंकर मेहता कृत "करणघेलो" उपन्यास उपलब्ध होता है। अन्य भारतीय प्रथम उपन्यासों में ए.के.गर्नी कृत "कामीनीकांतर" असमिया उपन्यास वैकंटरत्नम् पंतुलकृत "महाश्वेता" नामक तेलुगु उपन्यास वेदेनायकम् पिल्लई कृत "प्रताप मुदलियर-चरितम्" नामक तमिल उपन्यास आर्चे डिकनके. कोशी द्वारा प्रणीत "पुलेली कंचु" नामक मलयालम उपन्यास आदि की परिगणना कर सकते है।[6] किन्तु यहाँ हमारा लक्ष्य उपन्यास की विकासयात्रा को निरूपित करना नहीं है, क्योंकि उस मुद्दे पर हम परवर्ती पृष्ठों में आ रहे है। यहाँ हमारा लक्ष्य उपन्यास को परिभाषित करने का है, हालांकि यह कार्य थोड़ा कठिन है। क्योंकि उपन्यास साहित्य की सभी विद्याओं में सर्वाधिक जटिल और लचीली विद्या है। उसने प्रायः गद्य के तमाम रूपों को अपने में आर्विभूत कर लिया है। फिर भी यदि हम परिभाषित ही करना चाहें तो उपन्यास विषयक जो परिभाषाएँ आंग्लविवेचकों ने दी है। उन पर बहुत संक्षेप में दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। आंग्लविवेचकों की परिभाषाओं को हम प्रथमतः विवेचित करते है, क्योंकि मूलतः इस विद्या का आर्विभाव पश्चिम में ही हुआ है। यहाँ कतिपय परिभाषाओं को सामने रखकर उनको विश्लेषित करने का हमारा प्रयास रहेगा –

(1) सर्वप्रथम हम न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में दी गयी परिभाषा को लेते है – Novel is a fictional prose of considerable length, in which actions & characters are proffessing to represent those of reyal life, are portrayed in a plot"[7] अर्थात उपन्यास प्रकथानात्मक गद्य की वह विद्या है जिसमें अपेक्षाकृत विस्तार के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाली घटनाओं और चरित्रों को एक कथाश्रृंखला में बांधा जाता है। प्रस्तुत परिभाषा में कुछ मुद्दे साफ हुए है। एक तो यह कि उपन्यास गद्य की विद्या है। दूसरी बात यह कि उसका एक विशिष्ट आकार-प्रकार होता है। तीसरी यह कि उसमें निरूपित घटनाएँ वा प्रसंग वास्तविक होने चाहिए। चौथी यह कि उसमें निरूपित

पात्र भी वास्तविक एवम स्वाभाविक लगने चाहिए । इन सब बातों को एक निश्चित Plot (कथानक श्रृंखला) में प्रस्तुत किया जाता है । हिन्दी में कथावस्तु और Plot में अंतर निर्धारित नहीं किया गया है । किन्तु अंग्रेजी आलोचना में कथावस्तु (Story) और Plot को उपन्यास के विभिन्न तत्त्वों के अंतर्गत रखा गया है । आंग्लविवेचक , E.M.Forster ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है -- "A King died and then the queen died is a story, while a king died and then the queen died out of grief is a plot."[8] अभिप्राय यह कि Plot में कार्य-कारण श्रृंखला नियोजित रहती हैं । उपर्युक्त परिभाषा में इसे भी व्याख्यायित किया गया हैं, कि उपन्यास केवल कथावस्तु नहीं है पर उसकी विभिन्न घटनाओं को लेखक कार्यकारण श्रृंखला में आबद्ध करता है ।

(2) उपर्युक्त परिभाषा के पश्चात आंग्लभाषा के मूर्धजन्य आलोचक राल्फ फॉक्स महोदय की परिभाषा को यहाँ उद्‌घृत किया जा रहा है – "A novel is not merly a fictional prose, It is a prose of man's life, The first art to attempt the man as a whole and give his expressions."[9] अर्थात उपन्यास केवल प्रकथानात्मक नहीं है । वह मानवजीवन का गद्य है । उपन्यास वह पहली कला है जिसमें मनुष्य को उसकी समग्रता के साथ चित्रित किया जाता है । उसमें मानवीय भावनाओं का चित्रण रहता हैं । प्रस्तुत परिभाषा में राल्फ फॉक्स महोदय ने निभ्रॉंत तरीके से स्पष्ट किया है, कि उपन्यास की भाषा मानव जीवन की भाषा होगी । सरल शब्दों में कहें तो उपन्यास की भाषा पात्रों की भाषा होगी, अर्थात-बोलचाल की भाषा, Spoken language होगी । श्रीमती इरावाल्फ फर्टे ने भी उपन्यास की भाषा के संदर्भ में यही बात कहीं है ।[10] एक और महत्वपूर्ण बात यहाँ आलोचक महोदय ने कही है - वह यही कि उपन्यास में मानवचरित्र की यथार्थ छबि प्रस्तुत होनी चाहिए । मनुष्य में अच्छाइयाँ भी होती है और बुराइयाँ भी मनुष्य के ये दोनों रूप उसके चरित्र चित्रण में आने चाहिए ।

(3) प्रोफेसर Herbert.J.Mullar ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है – "Novel is Typically Representation of human experience, whether

ideal or libral, and therefore it is a comment upon life."[11] अर्थात उपन्यास में मूलतः मानव जीवन के अनुभवों का चित्रण रहता है । यह चित्रण यथार्थवादी भी हो सकता है और आदर्शवादी भी और इसलिए हम उपन्यास को मानवजीवन पर की गयी टिप्पणी कह सकते है । प्रस्तुत परिभाषा में Herbert महोदय ने भी मानवजीवन के अनुभवों के चित्रण की बात कहीं है. यद्यपि वे कहते है कि मानवजीवन का ये निरूपण दोनों ढंग से हो सकता है । आदर्शवादी ढंग से भी और यथार्थवादी ढंग से भी । अतः उपन्यास में मानवजीवन के चित्रण का गंभीर विश्लेषण रहता है । आंग्ल आलोचक, पोप का कथन है – "Study of man is a man". अर्थात मानवजीवन का अध्ययन करना हो तो किसी मनुष्य को सामने रखकर उसका अध्ययन किया जा सकता है । पोप महोदय की बात को हम उपन्यास के संदर्भ में भी कह सकते है कि किसी देशकाल के मनुष्य का वास्तविक अध्ययन करना हो तो उस देशकाल पर आधारित उपन्यास का अध्ययन करना चाहिए । कदाचित् इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते थे कि उत्तर-भारतीय ग्रामीणजीवन को यदि आप जानना चाहते है तो प्रेमचंद से बढ़िया दूसरा कोई परिचायक नहीं हो सकता ।[12]

(4) अंग्रेजी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के जनक हेनरी जेम्स महोदय ने उपन्यास को इस प्रकार परिभाषित किया है –"A Novel in it's broddest definition a personal, direct experiences of life." अर्थात उपन्यास अपनी व्यापकतम् परिभाषा में मानवजीवन के वैयक्तिम एवम प्रत्यक्ष अनुभवों का यथार्थ चित्रण है । जेम्स महोदय की इस परिभाषा में उन्होंने दो बातों पर विशेषजोर दिया है । - एक तो यह कि उपन्यासकार उपन्यास में जिन अनुभवों का वर्णन करता है वे अनुभव उसके अपने होते है । अर्थात किसी दूसरे के नहीं या सुने सुनाये हुए नहीं और दूसरी बात यह कि ये अनुभव प्रत्यक्ष अनुभव होते है । परोक्ष नहीं । अर्थात कहीं पढ़े हुए या किसी द्वारा सुने हुए नहीं । दूसरे शब्दों में कहें तो वे यहाँ पर First hand अनुभवों की बात करते है । Second hand or third hand नहीं । इसके द्वारा हेनरी जेम्स महोदय यह कहना चाहते है कि उपन्यासकार जिस जीवन का

चित्रण कर रहा है। उसको उसे प्रत्यक्षदर्शी अनुभव होना चाहिए। उसमें निरूपित पात्रों (लोगों) से उसका नजदीकी सरोकर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो हिन्दी आलोचक जिसे भोगा हुआ यथार्थ कहते है उसका वर्णन यहाँ होना चाहिए। प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन और मटियानी जैसे लेखकों में हमें यह जमीनी रिश्ता दृष्टि-गोचर होता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का यदि हम समग्रावलोकन करें तो एक तथ्य हमारे सामने आये बिना नहीं रहता है। लगभग तमाम विद्वानों ने एक स्वर और सूर में कहा है कि उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण होना चाहिए और यह चित्रण जितना ही यथार्थ होगा उपन्यास उतना ही श्रेष्ठ होगा। उपन्यास में जीवन की हूबहू, तस्वीर उभरकर आनी चाहिए। उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक को यह एहसास बराबर होना चाहिए कि वास्तविक जीवन ऐसा ही होता है। यदि उपन्यास को पढ़कर ऐसा प्रतीत हो कि यह तो किस्से कहानियों में ही होता है, वास्तविक जीवन में ऐसा कुछ नही होता, तो उस उपन्यास को हम सफल उपन्यास नहीं कह सकते। इस प्रकार उपन्यास की कला वास्तव की कला है, यथार्थ की कला है और जो उपन्यासकार जीवन में जितना ही ज्यादा गहरा उतरा होता है वह उतना ही सफल उपन्यासकार हो सकता है। जीवन के सीधे प्रत्यक्ष अनुभवों के बिना उपन्यास को लिखना संभव ही नहीं है। इस प्रकार उपन्यास एक यथार्थधर्मी विद्या प्रमाणित होती है।

उपर्युक्त आंग्ल विवेचकों की परिभाषा के बाद हम हिन्दी के विद्वानों की कतिपय परिभाषाओं पर भी विचार कर लेते हैं-

(1) सर्वप्रथम हम बाबू श्यामसुंदरदास की परिभाषा को लेते है। उन्होंने उपन्यास को परिभाषित करते हुए कहा है कि "उपन्यास, मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[13] डॉ.साहब की प्रस्तुत परिभाषा में उन लोगों के प्रश्न का उत्तर है जो यह कहते हैं कि उपन्यास यदि यथार्थ का ही चित्रण है तो उसमें उपन्यासकार के रचनाकर्म का क्या? तो फिर हम उपन्यासकार को एक सृजक या सृष्टा क्यों कहें? उन्होंने इसी बात का मानों उत्तर दिया है कि उपन्यास में वास्तविक जीवन का चित्रण होता है परंतु उसकी कथा काल्पनिक होती है। मुंशी प्रेमचंद ने जब गोदान लिखा होगा तो उनके सामने कोई होरी या धनियाँ नहीं रहे

होंगे-बल्कि उन्होंने होरी जैसे और धनियाँ जैसे कई लोगों को देखा होगा और उसके आधार पर उन्होंने होरी या धनियाँ की मूर्ति को तराशा होगा। अभिप्राय यह कि जीवन वास्तविक है पर उसे काल्पनिक कथा के माध्यम से लेखक प्रस्तुत करता हैं और इसी अर्थ में वह कला है। राल्फ फॉक्स महोदय ने बहुत स्पष्ट तरीके से कहा है कि उपन्यास वह पहली कला है जिसमें मनुष्य को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का अर्थ ही यथार्थता के साथ प्रस्तुत करने का है।

(2) दूसरी परिभाषा हम उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की दे रहे है। प्रेमचंदजी ने उपन्यास को पारिभाषित करते हुए लिखा है-"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानवचरित्र के रहस्यों को समझना और उस पर प्रकाश डालना ही उपन्यासकार का कार्य है।[14] इस परिभाषा में प्रेमचंदजी स्पष्ट करते हैं कि उपन्यास कथामात्र नहीं है। उपन्यास में मानव चरित्रों का चित्रण होना चाहिए। "मानव चरित्र" से प्रेमचंदजी का अभिप्राय मनुष्य का यथार्थ चित्रण से है। मनुष्य में अच्छाइयाँ भी होती है और बुराइयाँ भी होती है। अच्छे से अच्छे मनुष्य में बुराइयाँ हो सकती है और बुरे से बुरे मनुष्य में अच्छाइयाँ हो सकती है। राल्फ फॉम्स महोदय इसी बात को मनुष्य का समग्र चित्रण कहते है। दूसरी बात और बडी महत्वपूर्ण बात प्रेमचंदजी यहाँ यह कहते है कि यह मानवचरित्र का चित्र है। चित्र कभी 100 प्रतिशत मूल के बराबर नहीं होता है। चित्र प्रयत्न है। प्रेमचंदजी इसके द्वारा यह कहते है कि उपन्यासकार भी मानवचरित्र का चित्र बनाता है यह उसका प्रयत्न है, जितना ही ज्यादा वह उसके करीब जाएगा उतना उसे सफल माना जाएगा और इसीलिए यह कला है। तीसरी बात प्रेमचंदजी कहते है कि उपन्यासकार का कार्य इस मनुष्य के चरित्र का उद्‌घाटन है। इस प्रकार प्रेमचंदजी ने पहली बार हिन्दी उपन्यास को मानवचरित्र के साथ जोड़ा है। इसीलिए प्रेमचंदजी मानते है कि उपन्यासकार को मनुष्य के व्यवहार के मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए।

(3) तीसरी परिभाषा हम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की लेते है। उन्होंने उपन्यास की बडी संक्षिप्त सी परिभाषा दी है-"उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने

का प्रयास रहता है ।[15] यहाँ आचार्य द्विवेदीजी बिल्कुल स्पष्टता से कहते है कि उपन्यास में संसार का वास्तविक यथार्थ चित्रण होना चाहिए । समाज में अच्छे लोग भी होते हैं, बुरे लोग भी होते है और उपन्यास में उनकी अच्छाइयाँ और बुराइयों का लेखाजोखा होता है ।

(4) चौथी परिभाषा हिन्दी साहित्यकोश की है । उसमें बताया गया है – "यह शब्द "उप" (समीप) तथा "न्यास" (थाती) के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है ।[16] यहाँ भी वही बात कही गयी है कि उपन्यास में जीवन सा यथातथ्य चित्रण होता है । उपन्यास को पढ़कर यह प्रतीति होनी चाहिए कि यह हमारी ही कहानी है । "हमारी" शब्द का अर्थ यहाँ व्यापक रूप से लेना है । नागार्जुन जब "वरूण के बेटे" उपन्यास लिखते है, उसमें बिहार के मछुआरों के जीवन का चित्रण मिलता है । कोई कहे कि यह हमारा जीवन थोडी है? तो यहाँ अभिप्राय यह है कि उपन्यास में निरूपित जीवन समाज के किसी-न-किसी वर्ग से सम्बद्ध होता है ।

(5) पाँचवी परिभाषा हम द्विवेदीजी के शिष्य डॉ.एस.एन.गणेशन की लेते हैं । उन्होंने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है-"उपन्यास मनुष्य के सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है जो प्रायः एक कथासूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।[17] यहाँ पर डॉ.एस.एन.गणेशन ने यह स्पष्ट किया है कि उपन्यास में या तो सामाजिक यथार्थ होता है, या वैयक्तिक यथार्थ होता है । सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का प्राधान्य रहता है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से वैयक्तिक यथार्थ का प्राधान्य होता है । परंतु, जो श्रेष्ठ प्रकार के उपन्यास होते है जिनको हम "क्लासिक" उपन्यास या "Apic novel" कहते हैं, वहाँ पर ये दोनों प्रकार के यथार्थ का चित्रण मिलता है । मुंशी प्रेमचंद कृत "गोदान" इसका श्रेष्ठ उदाहरण है । दूसरी बात डॉ.गणेशन यह कहते हैं कि उपन्यास कला साहित्य का प्रकार होने के कारण उसमें रोचकता होनी चाहिए । यदि रोचकता नहीं होगी

तो उपन्यास की पठनीयता में व्याघात होगा । तीसरी और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उपन्यास किसी कथा सूत्र (Theme) को लेकर चलता है । उपन्यासकार का लक्ष्य केवल कथा कहना नहीं है । उपन्यासकार का दायित्व थोडा और ऊँचा है । वह अपने उपन्यास के द्वारा कुछ कहना चाहता है । समाज को कोई संदेश देना चाहता है । उपन्यास के कथासूत्र या theme में ही यह संदेश होता है । जैसे "निर्मला" उपन्यास में लेखक दहेजप्रथा तथा अनमेलविवाह के दुष्परिणामों को रेखाकिंत करते है, तो "गोदान" उपन्यास में लेखक कृषकों की दयनीय अवस्था के मूलभूत कारणों की पड़ताल करते है ।

इसी प्रकार उक्त परिभाषाओं से भी यही प्रमाणित होता है कि उपन्यास एक यथार्थधर्मी विद्या है । उपन्यास में समाज या व्यक्ति के यथार्थ जीवन को चित्रित किया जाता है । उपन्यास को यथार्थ पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए उसमें देशकाल, कथोपकथन, भाषाशैली आदि उपन्यास के अन्य तत्त्वों का चित्रण भी यथार्थ ढंग से किया जाता है ।

उपन्यास के विभिन्न रूपबंधः-

उपन्यास में मूलतः मानवजीवन या समाज जीवन का चित्रण होता है । उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है । अतः कथा तो उसकी रीढ है । प्रारंभिक उपन्यास कथावस्तु प्रधान ही होते थे । परंतु ज्यों-ज्यों उपन्यास का विकास होता गया, त्यों-त्यों उसके विभिन्न प्रकार या रुपबंध सामने आये । उपन्यास के इन विभिन्न रुपबंधों पर हम संक्षिप्त में विचार करेंगें ।

(1) **सामाजिक उपन्यासः**- हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ ही सामाजिक उपन्यासों को लेकर हुआ है । पंडित श्रद्धारामफुल्लोरी कृत "भाग्यवती" हिन्दी का प्रथम उपन्यास है, जिसमें नारीशिक्षा की बातों को निरुपित किया गया है । उपन्यास में कथा होती है, तो पात्र होते हैं और ये पात्र आकाशगामी तो नहीं होते? उनका कोई न कोई समाज होता है । अतः उपन्यास मूलतः तो सामाजिक ही होता है । परंतु बाद में दूसरी प्रवृत्तियों की प्रधानता के कारण उसके कुछ नये रुपबंध सामने आये । यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य रहेगा कि गुजराती का प्रथम उपन्यास "करण घेलो" ऐतिहासिक उपन्यास है । इस प्रकार हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ

जहाँ सामाजिक उपन्यासों से हुआ है, वहाँ गुजराती उपन्यास का प्रारंभ एक ऐतिहासिक उपन्यास से हुआ है। सामाजिक उपन्यासों में समाज के प्राण-प्रश्नों की और समाज की विभिन्न समस्याओं की चर्चा केन्द्र में रहती है। नवजागरण के कारण अनेक समस्याएँ लेखकों के सामने आयीं जैसे नारीशिक्षा की समस्या, दहेजप्रथा की समस्या, अनमेलविवाह की समस्या, जात-पाँत की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या आदि-आदि। अतः प्रेमचंद पूर्वकाल के सामाजिक उपन्यासकारों ने इन मुद्दों को लेकर उपन्यासों की रचना की थी। बाद में प्रेमचंद ने सामाजिक उपन्यासों को उनका वास्तविक गौरव प्रदान किया था। वस्तुतः सचमुच के सामाजिक उपन्यास हमें प्रेमचंद से ही मिलते है। हिन्दी के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में हम "परीक्षागुरु", "सौ अजान एक सुजान", "स्वतंत्ररमा परतंत्र लक्ष्मी", "सेवासदन", "गोदान", "निर्मला", "रंगभूमि", "कर्मभूमि", "गिरती दीवारें", "बूँद और समुद्र", "अमृत और विष", "लोहे के पंख" आदि की गणना कर सकते है।[18]

(2) **ऐतिहासिक उपन्यासः**- जहाँ उपन्यास की कथावस्तु के केन्द्र में कोई ऐतिहासिक वृत्तांत होता है तो उसे हम ऐतिहासिक उपन्यास कह सकते है। ऐतिहासिक उपन्यास की कथा ऐतिहासिक होती है। उसके पात्र भी ऐतिहासिक और विख्यात होते है। यद्यपि यथार्थ पृष्ठभूमि के निर्माणहेतु उपन्यासकार उन ऐतिहासिक पात्रों में कुछ काल्पनिक पात्रों को मिला देते हैं। यहाँ किसी को प्रश्न हो सकता है कि "इतिहास" और "ऐतिहासिक उपन्यास" में क्या अंतर है? इतिहास जहाँ शुष्क नीरस तथ्यों से भरा हुआ होता है। वहाँ ऐतिहासिक उपन्यासकार उसको कथारुप देते हुए उसमें रोचकता उत्पन्न करते है। ऐतिहासिक उपन्यासों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जिसे "इतिहास रस" कहते है।[19] उसकी सृष्टि होती है। इतिहास में लेखक ऐतिहासिक तथ्यों के साथ छेड़खानी नहीं कर सकता। यथातथ्यता उसका मुख्य गुण है। जबकि ऐतिहासिक उपन्यासों में मूलकथा को हानि न पहुँचाते हुए कुछ तथ्यों में परिवर्तन किये जा सकते है। ऐतिहासिक उपन्यासों में 70-80 प्रतिशत इतिहास

और 20-30 प्रतिशत कल्पना होती है । ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि के लिए उपन्यासकार को इतिहास का भलीभाँति ज्ञान होना चाहिए और कई बार उसे ऐतिहासिक तथ्यों की खोज के लिए उपन्यास की सृष्टि के पूर्व भरपूर शोध-कार्य (Research) भी करना पड़ता है । प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा के संदर्भ में कहा जाता है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि के पूर्व वे कई-कई वर्षो तक उपन्यास विषयक सामग्री की खोज में लगे रहते थे। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध आंग्ल उपन्यासकार जायसकैरी कहते है – "Mr.Cary explained that he was now 'Plotting' book. There was research yet to be done. Research, he explained, was sometimes a bore, but it was necessary for getting the political and social background of his work right."[20] अर्थात ऐतिहासिक उपन्यास के लिए इतिहासपरक तथ्यों के आविष्कार हेतु शोधकार्य करना ही पडता है । फिर भले ही उसमें बोरियत का अनुभव हो । ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्‌भव भी पूर्व प्रेमचंदकाल से हो गया था । परंतु पूर्व प्रेमचंदकाल के उपन्यास सचमुच के ऐतिहासिक उपन्यास न होकर ऐतिहासिक रमाख्यान "Histrotical Romances" है ।[21] वस्तुतः वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात भी प्रेमचंद युग में वृंदावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे लेखकों से हो गया था । पूर्व प्रेमचंदकाल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयराम-दासगुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेवप्रसाद मिश्र, आदि मुख्य हैं ।[22] किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है उसके उपन्यासों को ऐतिहासिक रमाख्यान कहना ही उचित रहेगा । वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास हमें प्रेमचंद तथा प्रेमचंरोत्तर युग में प्राप्त होते है । प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों में हम वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ.भगवती शरण मिश्र, डॉ.शिवप्रसाद सिंह आदि की गणना कर सकते है । और उनके चर्चित उपन्यास क्रमशः इस प्रकार हैं – विराटा की पद्‌मिनी; मृगनयनी; झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई; जय सोमनाथ; वैशाली की नगरवधू; सोना और खून;

बाणभट्ट की आत्मकथा; चारुचंद्रलेख; अमीता दिव्या; सिंह सेनापति; जय योध्देय; पहला सूरज; पीताम्बरा; गुरु गोविंदसिंह; नीला चाँद ।

(3) **मनोवैज्ञानिक उपन्यासः**- मनोवैज्ञानिक उपन्यास होते तो सामाजिक उपन्यास ही है । परंतु उनमें प्रायः मनोवैज्ञानिक समस्याओं, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों और मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरुपण होता है । सामाजिक उपन्यासों में जहाँ सामाजिक समस्याओं का विस्तार होता है, वहाँ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपने उपन्यास में मनोवैज्ञानिक स्थितियों और मनोवैज्ञानिक क्षणों को तलाशते है । डॉ.देवराज उपाध्याय ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के संदर्भ में लिखा है- "यदि किसी उपन्यास में घटना या अनुभूति के आत्मनिष्ठरुप को अभिव्यक्ति पर आग्रह पाएंगे तो उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहेंगे ।"[23] यहाँ डॉ.देवराज इस बात पर जोर देते हैं कि सामाजिक उपन्यास में समाज के बाह्य यथार्थ का चित्रण होता है, जबकि मनोवैज्ञानिक उपन्यास में किसी घटना में अंतर्निहित आंतरिक यथार्थ को विशेषतः लिया जाता है । डॉ.पारुकांत देसाई ने इस संदर्भ में लिखा है-"हिन्दी उपन्यासों का विकास क्रम घटना से चरित्र और चरित्र से व्यक्ति और व्यक्ति से मन की तरफ होता गया है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अचेतन मन की अछूति अनचिन्ही गहराइयों एवम् जटिलताओं की परतों को उधेड़ना का कलात्मक उपक्रम रहता है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उपन्यास के अन्य प्रकारों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं होता । इसके बिना तो अच्छे उपन्यास संभव ही नहीं । परंतु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में तो उपन्यासकार का मुख्य प्रतिपाद्य ही मनोवैज्ञानिक वस्तु पात्र एवम क्षण है । जिन बाह्य घटनाओं और संघर्षो का चित्रण सामाजिक उपन्यासकार अंत्यंत विस्तार के साथ करता है, हो सकता है, मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार उन्हें छोड़ दे या अंत्यंत संक्षेप में उनका वर्णन कर दें ।[24] मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंद युग में जेनेन्द्र एवम् इलाचंद्रजोशी द्वारा हो गया था । परंतु उनका अधिक विकास प्रेमचंदोत्तर युग में हुआ है । प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में हम जैनेन्द्रकुमार, इलाचंद्रजोशी, डॉ.देवराज, अज्ञेय, डॉ.रघुवंश, उषा

प्रियवंदा, कृष्णासोबती, राजकमल चौधरी, रमेश बक्षी, निर्मल वर्मा आदि की गणना कर सकते है और उनके चर्चित उपन्यासों में क्रमशः निम्नलिखित उपन्यासों का उल्लेख कर सकते है – त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, मुक्ति-बोध, दशार्क, प्रेत और छाया, जहाज के पंछी, भीतर-बाहर, भीतर का घांव अजय की डायरी, शेखर एक जीवनी भाग : 1, 2, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी, तंतुजाल, पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, सूरजमुखी अंधेरे के, मित्रो मरजानी, मछली मरी हुई, अट्ठारह सूरज के पौधे, बैसाखियों वाली इमारत, वे दिन, लालटीन की छत आदि-आदि ।

(4) **समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यासः**- उपन्यास के रुपबंधों के संबंध में एक रोचक तथ्य यह हैं कि उपन्यास के प्रायः रुपबंध उनके अलग अलग तत्त्वों से निष्पन्न हुए है । समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यास का संबंध विचारधारा या जीवनदर्शन से है । इन उपन्यासों में समाजवादी-मार्क्सवादी जीवन दृष्टि को केन्द्र में रखा जाता है । जिस प्रकार जहाज का पंछी उड़कर पुनः जहाज पर ही आ जाता है ठीक उसी प्रकार मार्क्सवादी समाजवादी उपन्यासकार पात्र निरुपण में कथोपकथन में विचारदृष्टि के निरुपण में किसी न किसी तरह से मार्क्सवादी विचारधारा को ले आते है । अतः वे उपन्यास का विषय वस्तु ही ऐसा चुनते है जिसमें उनको अपने विचारों की प्रस्तुति के लिए पूरी गुंजाईश रहती है । मार्क्सवादी विचारधारा सर्वहारा की विचारधारा है । अतः दलित, पीड़ित, शोषित वर्ग की और इन लोगों की विशेष सहानुभूति होती है और इसमें वे कुछ ऐसे तेजस्वीपात्र रचते हैं जिन के द्वारा मार्क्सवादी विचारधारा प्रस्तुत होती रहती है । उदाहरणतया गोदान के प्रोफेसर मेहता, वरुण के बेटे की माधुरी, बलचनमा का बल-चनमा आदि-आदि । मार्क्सवादी लेखक मानते हैं कि धर्म और शास्त्र के नाम पर दलितों ओंर नारियों का शोषण हुआ है । अतः वे इन दोनों को नकारते है, बल्कि धर्म का तो वे अफीम का नशा कहते है । दलितों के साथ वे नारियों को भी शोषित वर्ग में ही रखते है और उनकी शिक्षा तथा अधिकार के लिए वे निरंतर लड़ते रहे है । वस्तुतः समान कार्य के लिए समान प्रकार का वेतनमान की माँग मूलतः मार्क्सवादियों की ही माँग थी । जिसके फलस्वरुप इस संदर्भ में अब कोई

भेदभाव नहीं बरता जाता । मार्क्सवाद श्रम के महत्त्व को मानता है और श्रमिकराज्य की कल्पना करता है । धर्म, शास्त्र, परंपरा और रुढ़ियों के नाम पर जहाँ भी किसी मनुष्य का शोषण हुआ है । मार्क्सवादी विचारक उनका विरोध करते है । हिन्दी के मार्क्सवादी उपन्यासकारों में यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ.रांगेय-राघव, नागार्जुन, आदि मुख्य हैं और उनके उपन्यास क्रमशः इस प्रकार है-"दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, झूटा-सच, जय यौध्येय, सिंह सेनापति, कब तक पुकारुँ, बलचनमा, वरुण के बेटे, इमरतियाँ आदि-आदि ।

(5) **पौराणिक उपन्यासः**- जहाँ किसी उपन्यास की कथा-वस्तु को पुराणों से लिया जाता है, वहाँ पौराणिक उपन्यास की सृष्टि होती है । दूसरे शब्दों में कहें तो पौराणिक उपन्यास की कथावस्तु पौराणिक वृत्तांत पर आधारित होती है । यहाँ एक स्पष्टता करना बहुत आवश्यक है कि इतिहास और ये दो अलग-अलग विभावनाएँ है और इस लिए ऐतिहासिक उपन्यास भी अलग होते है और पौराणिक उपन्यास भी अलग होते है । ऐसा इस लिए कहना पड़ रहा है कि हिन्दी के बहुत से विद्वान पौराणिक उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यास के खाते में डालते रहे है । डॉ.रामदरश मिश्र ने अपने आलोचना ग्रंथ "हिन्दी उपन्यास एक अंतयात्रा में डॉ.नगेन्द्र कोहली के "दीक्षा और अवसर" आदि उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यास के वर्ग में रखा है ।[25] वस्तुतः उपर्युक्त दोनों उपन्यास "रामायण" के वृत्तांत पर आधारित है । बाद में डॉ.कोहली ने रामायण की कथावस्तु को आगे बढ़ाते हुए "संघर्ष की ओर" तथा "युद्ध" नामक और दो उपन्यास लिखे है । इस प्रकार रामायण की कथावस्तु को लेकर उन्होंने चार उपन्यासों की रचना की है । बाद में महाभारत के वृत्तांत को लेकर उन्होंने महासमर भाग 1 से 8 की रचना की है । स्वयं डॉ.नरेन्द्र कोहली ने अपने उपन्यासों को पौराणिक उपन्यासों की संज्ञा दी है ।[26] वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों और पौराणिक उपन्यासों में उतना ही अंतर है जितना इतिहास और पुराण में है । हमारा इतिहास अभी तीन साढे तीन हजार साल पुराना है । उसके पहले की घटनाओं को हम पुराण कहते है । अब तो Mythology के रुप में एक अलग शास्त्र ही विकसित हो चला है । भविष्य में

रामायण या महाभारतकाल पर वैज्ञानिक तरीके से इतिहास परक खोज हो और उनकी ऐतिहासिकता साबित हो जाय तब हम उसको इतिहास कहेंगे अन्यथा उनकी गणना पुरानकाल में ही होगी । इतिहास का एक अहम लक्षण है उसकी काल क्रमिकता वहाँ पर घटनाओं की कालक्रम को श्रृंखलाबद्ध तरीके से प्रस्तुत करना पड़ता है । वहाँ पर वर्षो और तारीखों का महत्त्व होता है जबकि पुराणों में कालक्रमिकता विषयक कोई विभावना नहीं है । दूसरे ऐतिहासिक घटनाओं में तार्किकता होती है जबकि पुराणों के प्रायः चमत्कारपूर्ण घटनाओं को स्थान दिया जाता है । अभिप्राय यह है कि इतिहास और पुराण में दो अलग विभावना है और इसलिए पौराणिक उपन्यासों को ऐतिहासिक कहना उचित नहीं है । अब किसी को यह प्रश्न हो सकता है कि उपन्यास तो यथार्थधर्मी विद्या है फिर पौराणिक कथावृत्त उसमें किस प्रकार आ सकता है? उसका उत्तर यह है कि पौराणिक उपन्यास भी उपन्यास होता है, वह पौराणिक आख्यान नहीं है अतः उसे भी यथार्थ की कसौटी पर खरा उतरना होता है । अतः पौराणिक उपन्यासकार चमत्कारपूर्ण घटनाओं तथा मिथक कथाओं की व्याख्या उनका अर्थघटन वैज्ञानिक तर्क संगत यथार्थ तरीके से करते है ।

उदाहरणतया डॉ.नरेन्द्र कोहली ने रामायण पर आधारित पौराणिक उपन्यासों में संपूर्ण अहिल्या कथा को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है । अहल्या आघात के कारण संज्ञा शून्य और विक्षिप्त सी हो गयी है । मानों पत्थर की शिला बन गयी है । उसी तरह उनकी उपन्यासमाला के हनुमानजी भी उड़कर नहीं, अपितु समुद्र के स्थितया[27] भाग से संतरण करते हुए लंका पहुँचते है । भीम हनुमान प्रसंग को भी उन्होंने अपनी महाभारत उपन्यास माला में तर्क संगत रुप से प्रस्तुत किया है । उपन्यास में भीम को उस प्रकार का स्वप्न आता है । चर्चित पौराणिक उपन्यासों में "व्यम रक्षा": (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) अनामदास का पोथा (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) प्रथम पुरुष (भगवती चरण मिश्र) सुतोवासोपुत्रोवा (डॉ.बच्चन सिंह) तथा डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण एवम महाभारत के वस्तु पर आधारित पौराणिक उपन्यास आदि की गणना कर सकते है ।

(6) **आंचलिक उपन्यासः**- जो उपन्यास किसी अंचल विशेष से सम्बद्ध होता है उसे आंचलिक उपन्यास कहा जाता है । अब यहाँ प्रश्न यह होता है कि अंचल या प्रदेश विशेष तो प्रत्येक उपन्यास का एक अनिवार्य तत्त्व होता है, तो क्या प्रत्येक उपन्यास आंचलिक होगा? वस्तुतः सन 1954 में फणीश्वरनाथ कृत उपन्यास "मैला आँचल" के प्रकाशन के पश्चात ही प्रस्तुत रुपबंध का नामकरण हुआ है । स्वयं रेणुजी ने पंथजी की एक कविता का हवाला देकर अपने उपन्यास को आंचलिक कहा है । वस्तुतः प्रत्येक उपन्यास में वातावरण या "देशकाल" का तत्त्व होता है । देशकाल में दो बातें होती हैं – देश अर्थात प्रदेश अर्थात कोई स्थान विशेष और काल अर्थात समय । अतः यह तत्त्व तो सभी उपन्यासों में होता है । परंतु आंचलिक उपन्यास में यह तत्त्व अन्य तत्त्वों की तुलना में अपेक्षा कृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है । जहाँ पर किसी अंचल विशेष का चित्रण उसकी समग्रता में होता है, वहाँ उसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाएगी । "समग्रता से" के पीछे हमारा अभिप्राय यह है कि उसमें उस अंचल की तमाम छोटी से छोटी ओर बड़ी से बड़ी विशेषताओं को चित्रित किया जाएगा । अर्थात वह अंचल, उसके लोग, उसकी विभिन्न टोलियाँ, विभिन्न जातियाँ, उनकी बोली ठोली, उनके विश्वास – अविश्वास उनकी मान्यताएँ, तीज-त्योहार, खेत-खलिहान, मैले-ठेले, नदी-निर्झर, वन-उपवन आदि तमाम बातों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्योरें ऐसे उपन्यासों में दिये जाते है । यहाँ भाषा भी मानक हिन्दी रहकर आंचलक बोली के रुप में आती है । केवल लेखकीय टिप्पणियाँ मानक भाषा में हो सकती है । गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि आलोचक उमाशंकर जोशी ने मैला आंचल उपन्यास की आलोचना करते हुए उसमें निरुपित विभिन्न टोलियों के लोगों की बोलियों के लगभग डेढ़ सौ अलग-अलग टोन की चर्चा की है ।[28] इस तरह देखा जाय तो आंचलिक उपन्यास में उपन्यास का नायक वह अंचल विशेष ही होता है । "मैला आंचल का नायक पूर्णिया जिले का "मेरी गंज" गाँव ही है । अंग्रेजी के Hardy इत्यादि के "Novel's of local colours" को हम आंचलिक उपन्यास के समीपवर्ती मान सकते है । गुजराती में ऐसे उपन्यासों को "जनपदीय नवलकथा"

कहते है । पन्नालाल पटेल, ईश्वरपेटलीकर तथा झवेरचंद मेघाणी के कुछ उपन्यासों को हम इस कोटि में रख सकते है । आंचलिक उपन्यास को लेकर एक धाँधली हिन्दी उपन्यास आलोचना क्षेत्र में चली है । "मैला आँचल" के बाद जो भी उपन्यास ग्रामीण पृष्ठ भूमि को लेकर आये है उनको आलोचकों ने आँचलिक उपन्यास की कोटि में रख दिया । वस्तुतः आंचलिक उपन्यास और ग्रामभीतीय उपन्यासों में अंतर करना होगा । मैला आँचल के पूर्व भी कई उपन्यासों में हमें ग्रामीण पृष्ठभूमि उपलब्ध होती है तो क्या उन सभी उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास कहा जाएगा? केवल उन उपन्यासों को ही आँचलिक कहना चाहिए जिनमें अंचल विशेष उसकी तमाम विशेषताओं के साथ उभरकर आता है । चर्चित आंचलिक उपन्यासों में "मैला आँचल" परती परिकथा (फणीश्वरनाथ रेणु) वरुण के बेटे, (नागार्जुन) हौलदार चौथी मुट्ठी, चिट्ठी रसेन, (मटियानी) सागर लहरें और मनुष्य (उदयशंकर भट्ट) जंगल के फूल (राजेन्द्र अवस्थी) अलग वेतरणी (शिवप्रसाद सिंह) काशी का अस्सी (काशीनाथ सिंह) आदि की गणना कर सकते है।

हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा :-

हमारी आलोच्य उपन्यास लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास "स्मृतिदंश" सन् 1990 में प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः उसे उपन्यास न कहकर "उपन्यासिका" कहना उचित होगा।[29] जो हो, उनका लेखन सन् 1990 से शुरु हो गया था। अतःहम यहाँ बहुत संक्षेप में सन् 1990 तक के औपन्यासिक विकास का विहंगावलोकन प्रस्तुत करेंगे। हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" (पंड़ित श्रद्धारामफुल्लौरी) सन् 1878 में प्रकाशित हुआ था । इस प्रकार सन् 90 तक लगभग हिन्दी उपन्यास के 110 वर्ष हो जाते हैं । हिन्दी उपन्यास के विकास में मुंशी प्रेमचंद के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। अतः हिन्दी उपन्यास के विकास को चिन्हित करते हुए आलोचकों ने प्रायः विभिन्न कालखण्डों में प्रेमचंद का नाम केन्द्र में रखा है, जैसे पूर्व प्रेमचंदकाल (1878 से 1918) प्रेमचंदकाल (सन् 1918-1936) तथा प्रेमचंदोत्तर काल (सन् 1936 - अध्यावधि) प्रेमचंदोत्तर काल को पुनः आलोचकों ने अपनी सुविधा के लिए स्वतंत्रता पूर्वकाल (1936-1947)

स्वात्र्यंत्तोत्तरकाल (1947-1960) साठोत्तरी काल (1960-1980) तथा समकालीन उपन्यास (1980 - अद्यावधि) आदि कालखण्ड़ों में विभक्त किया है ।

पूर्व प्रेमचंदकाल : पूर्वप्रेमचंदकाल में हमें सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, तिलस्मी तथा अनूदित उपन्यास मिलते हैं । पूर्व प्रेमचंदकाल के सामाजिक उपन्यासकारों में पंडित श्रद्धारामफुल्लौरी, लाला श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, ठाकुर जगमोहन सिंह, मन्नन द्विवेदी आदि की गणना कर सकते है । और उनके चर्चित उपन्यासों में क्रमशः "भाग्यवती", "परीक्षागुरू", "सौ अजान एक सुजान", "स्वतंत्र्य रमा परतंत्र लक्ष्मी", "त्रिवेणी", "ठेठ हिन्दी का ठाठ", "श्यामा स्वप्न", "रामलाल" आदि का उल्लेख कर सकते हैं । ये उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से स्थूल कथावस्तु प्रधान एवम् अपरिपक्व हैं । औपन्यासिक कला का समुचित विकास अभी तक नहीं हुआ था । ये उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से स्थूल कथावस्तु प्रधान एवम् अपरिपक्व हैं । औपन्यासिक कला का समुचित विकास अभी तक नहीं हुआ था । उपन्यास का समुचित कलात्मक विकास प्रेमचंद के द्वारा हुआ । प्रस्तुत कालखण्ड़ में सामाजिक उपन्यासों के अलावा ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये । परंतु उनको ऐतिहासिक उपन्यास न कह कर ऐतिहासिक रमाख्यान कहना अधिक उचित होगा ।[30] इसका कालखण्ड़ के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेव प्रसाद मिश्र, बाबू ब्रजनंदन सहाय, मिश्रबंधु आदि प्रसिद्ध हैं । उनके चर्चित उपन्यासों में क्रमशः तारा, नूरजहाँ, नूरजहाँबिगम वा जहाँगीर, अनारकली, लालचीन, वीरमणि आदि की गणना कर सकते हैं । तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यासों का यद्यपि स्तरीय नहीं माना जाता तथापि प्रारंभिककाल से उनका उल्लेख किया गया है । बाद के कालखण्डों में उनका कहीं जिक्र नहीं आता । प्रमुख तिलस्मी उपन्यासकार के रूप में हम बाबू देवकीनंदनखत्री की गणना कर सकते हैं । जिनकी (चंद्रकांता)(चंद्रकांता संतति) उपन्यास माला बहु चर्चित एवम् लोकप्रिय हुई थी । जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराय गहमरी का नाम लिया जाता है । उन्होंने लगभग 200 जितने जासूसी उपन्यास लिखे हैं । उनको हिन्दी का "कानन डायल" कहा जाता है ।[31] अनूदित उपन्यासों का उल्लेख भी केवल इसी कालखण्ड़ में हुआ है, बाद में उनका उल्लेख आलोचकों ने नहीं किया,

क्योंकि ये उपन्यास जिन-जिन भाषाओं में लिखे गए हैं उनकी मूलधरोहर माने जाते हैं। प्रारंभिक काल में उनका उल्लेख इस लिए किया गया कि इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास की दशा और दिशा निर्धारित की। इस कालखण्ड़ में अनूदित उपन्यास सब से ज्यादा मिलते हैं। अंग्रेजी, बंग्ला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, उड़िया आदि भाषाओं से उपन्यासों के अनुवाद किए गए हैं।

प्रेमचंदकालः- हिन्दी उपन्यास से प्रेमचंद का आर्विभाव एक प्रमुख साहित्यिक घटना है। प्रेमचंद ने न केवल स्तरीय एवम् साहित्यिक समस्यामूलक उपन्यास दिए, उन्होंने उपन्यास के मानदंडों को भी निर्धारित किया और अपने समय की एक समग्र पीढ़ी को तैयार किया। सचमुच सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंदजी द्वारा ही हुआ। उन्होंने उपन्यास को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा और तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक स्थिति को उजागर किया। मानवचरित्र की पहचान सर्वप्रथम करानेवाले मुंशी प्रेमचंद ही है।[32] प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को विश्वसाहित्य के स्तर पर ला दिया। उनकी तुलना गोर्की तथा चेखव जैसे समर्थ वैश्विक कथाकारों के साथ होने लगी। उनके प्रमुख उपन्यासों में सेवासदन, वरदान, प्रतिज्ञा, निर्मला, गबन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान आदि है। प्रेमचंद की औपन्यासिक कला का सर्वोत्तम शिखर गोदान है। प्रेमचंद ने अपने इन उपन्यासों में भारत के चर्तुमुखी शोषण को अभिव्यक्त किया है। यह चतुर्मुखी शोषण इस प्रकार है-गरीब किसानों और मजदूरों का शोषण, दलित जातियों का शोषण, नारियों का शोषण तथा अंग्रेज सरकार द्वारा हो रहें समग्र देश का शोषण। इस समय नारी विमर्श एवम् दलित विमर्श के मुद्दे साहित्यिक चर्चा में हैं, वस्तुतः उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण प्रेमचंदजी ने ही कर दिया था।

प्रेमचंद का महत्त्व केवल इसमें नहीं है कि उन्होंने कालजयी उपन्यासों की रचना की, बल्कि इसलिए भी है कि उन्होंने एक युग का निर्माण किया, एक पीढ़ी का निर्माण किया, हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान की और नवोदित उपन्यासकारों को यथोचित मार्गदर्शन भी दिया। प्रेमचंद ने जिस पीढ़ी को तैयार किया उसे हम प्रेमचंद स्कूल के उपन्यासकार कह सकते हैं। प्रेमचंद स्कूल के उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" पाण्डेय बेचेन शर्मा, "उग्र", चतुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद वाजपेयी,

ऋषभचरण जैन, जयशंकर प्रसाद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, वृंदावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी, "निराला" सिया रामशरण गुप्त, गोविंद वल्ल पन्त, राजेश्वरप्रसाद, धनीराम प्रेम, प्रफुल्लचंद्र ओझा, श्रीनाथ सिंह, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी, तेजो रानी दीक्षित, चंद्रशेखर शास्त्री, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा आदि की गणना कर सकते है ।[33] इनके चर्चित उपन्यासों में (प्रस्तुत कालखण्ड़ में) "माँ" भिखारिनी (कौशिकजी), "घंटा" "चंद हसीनों के खतुत", "बुधवा की बेटी", (उग्रजी), ह्रदय की परख, व्यभिचार (चतुरसेन शास्त्री), त्यागमयी, प्रेमनिर्वाह (भगवतीप्रसाद वाजपेयी), दिल्ली का व्यभिचार (वेश्यापुत्र), (ऋषभचरण जैन), कंकाल, तितली (जयशंकर प्रसाद), अप्सरा, अल्का (सूर्यकांत त्रिपाठी), (निराला), मदारी (गोविंद वल्लभ पंत), गोद, अंतिम अंकाक्षा (सियाराम शरण गुप्त), लगन, संगम (वृंदावनलाल वर्मा) वेश्या का ह्रदय (धनीराम प्रेम) नारी ह्रदय (शिवानी देवी), वचन का मोल (उषादेवी मित्रा) ह्रदय का कांटा (तेजोरानी दीक्षित) आदि की गणना कर सकते है ।[34]

प्रेमचंद के प्रभाव के कारण इस युग में वृंदावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास लिखे थे । हाँलाकि बाद में उनकी पहचान ऐतिहासिक उपन्यासकार के रुप में हमें मिलती हैं । इस कालखण्ड़ के अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों में खवास का ब्याह (चतुर सेन शास्त्री) गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी आदि की गणना कर सकते हैं । इस कालखण्ड़ में प्रमुखरुप से हमें दो औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं – सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास हाँलाकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात जैनेन्द्र और इलाचंदजोशी द्वारा हो गया था, परंतु उनका औपन्यासिक विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में ही होता है । इस कालखण्ड़ में जैनेन्द्र के दो उपन्यास प्राप्त होते हैं । "परख" और "सुनीता" । आलोचकों के मतानुसार राजनीतिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंद द्वारा ही हो गया था । प्रेमचंद कृत "प्रेमाश्रम" इस दृष्टि से हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास हैं । प्रेमचंद की विचार धारा के केन्द्र में मानववादी मूल्य सदैव रहे है । परंतु विचारधारा की दृष्टि से देखे तो प्रेमचंद का विकास आर्य समाजी, गांधीवादी और मार्क्सवादी लेखक के रुप में क्रमशः हुआ है ।

"गोदान" तक आते-आते प्रेमचंद रुप में लगभग मार्क्सवादी हो गये थे। गोदान में प्रोफेसर मेहता, मार्क्सवाद के प्रवक्ता पात्र के रुप में आये हैं।

प्रेमचंदोत्तर कालः-

सन् 1936 प्रेमचंद का निधन हुआ, अतः सन् 1936 के बाद के कालखण्ड़ को प्रेमचंदोत्तर काल की संज्ञा दी गयी है। सन् 1947 को हमारा देश स्वाधीन होता है। प्रारंभ के कुछ वर्ष सुनहरे भविष्य की कल्पना में आनंद, उमंग, उल्लास में व्यतीत हो जाते हैं। परंतु आज़ादी के दश-पंद्रह वर्षो तक की सामान्य प्रजा की स्थिति में कोई खास बदलाव नज़र नहीं आता और लेखकों, चिंतको और कवियों को लगने लगता है कि ये आज़ादी महज सत्ता का (हस्तांतरण) (Transfer of Power) मात्र रह गयी है और अन्याय, अत्याचार, शोषण, भ्रष्टाचार आदि में निरंतर बढ़ोत्तरी होती है। तो एक मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता है। अतः भारतीय साहित्य में, विशेषतः हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी साहित्य की अवधारणा सामने आती है। अतः प्रेमचंदोत्तकाल की समयसीमा सन् 1960 तक निर्धारित हुयी हैं। हालाँकि औपन्यासिक प्रवृत्तियों के विकास में अध्ययन की सुविधाहेतु हमने साठ के बाद के उपन्यासों को भी समेकित किया है।

प्रेमचंदोत्तरकाल में हमें निम्नलिखित औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं – (1) सामाजिक उपन्यास (2) ऐतिहासिक उपन्यास (3) मनोवैज्ञानिक उपन्यास (4) मार्क्सवादी या समाजवादी उपन्यास (5) आंचलिक उपन्यास

(1) सामाजिक उपन्यासः- प्रेमचंदोत्तरकाल के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में टेढ़े मेढ़े रास्ते, भूले बिसरे चित्र, (भगवती चरण वर्मा), मनुष्य और देवता, भूदान, उस से न कहना, भगवती प्रसाद वाजपेयी, गिरती दीवारें, गर्म राख, पत्थर अल पत्थर, (उपेन्द्र नाथ अश्क), लोहे के पंख (हिमांशु श्रीवास्तव), धर्मपुत्र, बगुला के पंख (आचार्य चतुरसेन शास्त्री), अचल मेरा कोई, अमरवेल (वृंदावनलाल वर्मा) जुनिया, जलसमाधि, फरगेट मी नोट (गोविंद वल्लभ पंत), चंपाकली, हिज-हाईनेस, बुर्दा-फरोश, तीन इक्के (ऋषभ चरण जैन), राम-रहीम, गांधीटोपी, चुंबन और काँटा (राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह), घेरे के बाहर (द्वारिका प्रसाद), बयालिस विश्वास की बेदी पर (प्रतापनारायण श्रीवास्तव), चोटी की

पकड़, बिल्ले सुर बकरीहा, कुल्लीभाट (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला), जीवन की मुस्कान, पथचोरी और नष्टनीड़ (उषादेवी मित्रा), निशीकान्त, तट के बंधन (विष्णु प्रभाकर), प्रभुति की गणना कर सकते है ।[35]

(2) **ऐतिहासिक उपन्यासः-** प्रेमचंदोत्तरकाल के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में झाँसी की रानी, मृगनयनी, अहिल्या बाई (वृंदावनलाल वर्मा), वैशाली की नगरवधू, सोमनाथ, सोना और खून (चतुर सेन शास्त्री), बाणभट्ट की आत्मकथा (डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी), जय यौध्येय (राहुल सांस्कृत्यायन), मुर्दो का टीला (रांगेयराघव), दिव्या, अमीता (यशपाल), बहती गंगा (शिवप्रसाद मिश्र), बेकसी का मज़ार (प्रतापनारायण श्रीवास्तव), शतरंज के मोहरें (अमृतलाल नागर), चित्रलेखा (भगवती चरण वर्मा) इत्यादि उपन्यासों को उल्लेखनीय कहा जा सकता हैं ।[36]

(3) **मनोवैज्ञानिक उपन्यासः-** मनोवैज्ञानिक उपन्यास होते तो सामाजिक उपन्यास ही है, परंतु उनकी कथावस्तु में मनोवैज्ञानिक समस्याओं, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों और मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरुपण सविशेष होता है । प्रेमचंदोत्तरकाल के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, जयवर्धन (जैनेन्द्र कुमार), प्रेत और छाया, पर्दे की रानी, संन्यासी, जहाज का पंछी (इलाचंद्र जोशी), शेखर एक जीवनी भाग-1,2, नदी के द्वीप (अज्ञेय), पंथ की खोज, बाहर-भीतर, अजेय की डायरी (डॉ,देवराज), गुनाहों का देवता (धर्मवीर भारती), डूबते मस्तूल, दो एकांत (नरेश महेता), चाँदनी के खण्डर (गिरधर गोपाल), तंतुजाल (डॉ.रघुवंश), द्वाभा साँचा (डॉ.प्रभाकर माचवे) आदि औपन्यासिक कृत्तियों की गणना कर सकते हैं ।

(4) **मार्क्सवादी या समाजवादी उपन्यासः-** वस्तुतः ये औपन्यासिक विद्याएँ सामाजिक उपन्यास के विकास स्वरुप ही आयी हैं, परंतु किसी औपन्यासिक विद्या में किसी तथ्य-विशेष या विचार विशेष के केन्द्रस्थ होने से विभिन्न विद्याओं का उद्‌भव हुआ है । मार्क्सवादी पर समाजवादी उपन्यास उसे कहते हैं जिसमें उसके लेखक की विचारधारा मार्क्सवादी या समाजवादी हो और उसने उसी विचारधारा को

केन्द्र में रखते हुए उपन्यास का वस्तु नियोजन और पात्रसृष्टि की हो । मार्क्सवादी विचारधारा दलितों, पीड़ितों, शोषितों, श्रमिकों और किसानों की पक्षधर विचारधारा है । इन्हें ये "सर्वहारा वर्ग" कहते हैं और उनका लेखन चिंतन आदि सब इस वर्ग के उत्थान हेतु होता हैं । मार्क्सवाद धर्म, ईश्वर, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, पूंजीबाद, सामंतवाद आदि को नकराता है । वह स्त्री-पुरुष समानता में विश्वास रखता है और मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी प्रकार का अंतर नहीं होना चाहिए इसी बात पर जोर देता हैं । यद्यपि मार्क्सवादी उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचंदयुग में उनके "गोदान" उपन्यास से हो गया था परंतु उसका विशेष पल्लवन और विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में दृष्टिगोचर होता ह । प्रमुख मार्क्सवादी उपन्यासों को हम निम्नलिखित की परिगणना कर सकते हैं – "दादा कामरेड", "पार्टी कामरेड", "मनुष्य के रुप", "झूठा-सच" (यशपाल), बलचनमा, नयी पौध, दु:खमोचन, वरुण के बेटे (नागार्जुन), "विषादमठ", "हुजूर", "सीधा-साधा रास्ता" (डॉ.रांगेयराघव), "सती मैया का चौरा", "मशाल" (भैरव प्रसाद गुप्त), "बीज", "हाथी के दाँत" (अमृतराय), "बया का घोसला और साँप", "काले फूल का पौंधा, "रुपाजीवा (लक्ष्मीनारायण लाल), "उखड़े हुए लोग, कुल्टा, सह और मात (राजेन्द्र यादव), खाली कुर्सी की आत्मा (लक्ष्मीकांत वर्मा), जमींदार का बेटा, (दयानाथ झा), मूदानी सोनिया (उदयराज सिंह) चढ़ती धूप (रामेश्वर शुक्ल अंचल) आदि-आदि ।[37]

(5) आंचलिक उपन्यास सन् 1954 में फणीश्वरनाथ रेणू के "मैला आंचल" के प्रकाशन के साथ ही आंचलिक विद्या का उद्‌भव माना जाता है । स्वयं रेणू ने अपने उपन्यास को "आंचलिक" उपन्यास की संज्ञा दी है । "आंचलिक" शब्द अंचल से व्युत्पन्न हुआ है । अंचल अर्थात् कोई स्थान विशेष । अब अंचल या स्थान तो सभी उपन्यासों में होते हैं तो फिर आंचलिक उपन्यास से क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर यह है कि अंचल तो सभी उपन्यासों में होते है परंतु आंचलिक उपन्यास में उस अंचल विशेष का चित्रण समग्रता से किया जाता है । आंचलिक उपन्यास में उसका नामक वह अंचल विशेष ही होता है । "मैला आंचल" का नामक पूर्णिया जिले का "मेरीगंज" गाँव ही है । आंचलिक उपन्यास में अंचल

विशेष ही होता है । आंचलिक उपन्यास में अंचल के लोग उनकी बोली ठोली, रीति-रिवाज, विश्वास, अविश्वास, मान्यताएँ, खान-पान, पहचान, खेत-खलिहान, नदी-निर्झर, मेले आदि सभी का साँगोपाँग वर्णन होता है । प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में "मैला-आंचल" परती परिकथा (फणीश्वरनाथ रेणू), वरुण के बेटे, दु:खमोचन (नागार्जुन), दूब जन्म आयी (शिव सागर मिश्र), बहती गंगा (शिवप्रसाद मिश्र), होलदार चिट्ठी चतुरसेन, एक मूठ सरसों (शैलेष मटियानी), रथ के पहिये, ब्रह्मपुत्र (देवेन्द्र सत्यार्थी), जंगल के फूल (राजेन्द्र अवस्थी), कब तक पूकारुँ (रांगेय राघव), सागर लहरें और मनुष्य (उदय शंकर भट्ट), आदि की गणना कर सकते हैं ।[38]

(6) राजनीतिक उपन्यास:- जहाँ किसी उपन्यास विशेष में राजनीतिक विचारधाराओं और आंदोलनों को केन्द्र स्थान में रखा जाता है वहाँ उनको राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा मिलती है । इसका सूत्रपात भी प्रेमचंदयुग में प्रेमाश्रम के द्वारा हो गया था । परंतु उसका विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में देखा जा सकता है । प्रमुख राजनीतिक उपन्यासों में प्रश्न और मरीचिका, सबहिं नचावत राम गोंसाई (भगवती चरणवर्मा), झूठा-सच, (यशपाल), एक पंखुड़ी की तेज धार (शमशेर सिंह नरुला) आदि की गणना कर सकते हैं ।[39]

(7) व्यंग्यात्मक उपन्यास:- उपन्यास अपने प्रारंभिक काल से ही विरोध का साहित्य (Literature of discart) रहा है और व्यंग्य तो विरोध का मुख्य औजार है, अत: उपन्यास में व्यंग्य की उपस्थिति तो सदैव रहती है तो फिर व्यंग्यात्मक उपन्यासों से क्या तात्पर्य है? अत: व्यंग्यात्मक उपन्यास हम उनको कह सकते है जहाँ उपन्यास की कथावस्तु तथा पात्रसृष्टि में व्यंग्य की ही प्रधानता है । जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार, मनोवैज्ञानिक क्षणों (Psychological moments) को तरासता है ठीक उसी प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यासकार व्यंग्यात्मक क्षणों के जुगाड़ में रहता है । प्रेमचंदोत्तरकाल में इसका सूत्रपात श्रीलालशुक्ल कृत "राग दरबारी" उपन्यास से माना जाता है । प्रमुख व्यंग्यात्मक उपन्यासों में कथासूर्य की नयी यात्रा (हिमांशु श्रीवास्तव) एक चूहे की मौत (बदी उज्जमा), जंगल

तत्रम (श्रवण कहीन) (मनोहर श्याम जोशी) सभी नचावत राम गोसाई (भगवती चरण वर्मा) आदि की गणना कर सकते हैं ।[40]

(8) **पौराणिक उपन्यासः-** अधिकांश लोग ऐतिहासिक और पौराणिक में अंतर नहीं करते, किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों और पौराणिक उपन्यासों में उतना ही अंतर है जितना इतिहास और पुराण । पौराणिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंदोत्तर काल में डॉ.नरेन्द्र कोहली से माना जाता है । डॉ.कोहली ने रामायण और महाभारत को लेकर क्रमशः चार और आठ उपन्यासों की रचना की हैं । डॉ.कोहली के उपन्यासों में अतिरिक्त प्रमुख पौराणिक उपन्यासों में वयम रक्षामः (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) अपने अपने राम (डॉ.भगवान सिंह) सूत्रो वा सूत्र पुत्रोवा (डॉ.बच्चन सिंह) पवनपुत्र, पुरुषोत्तम, प्रथम पुरुष (डॉ.भगवती शरण मिश्र) एकदा नैमिषारण्य (नरेश महेता) संभवामि युगे युगे (कन्हैयालाल ओझा) की परिगणना की जा सकती हैं ।[41]

साठोत्तरी उपन्यासः-

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ठ किया गया है सन् साठ के बाद भारतीय समाज के लेखकों एवम् चिंतकों में मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता हैं । इन लोगों को आज़ादी महज एक छलावा लगती है क्योंकि स्थितियों में बहुत परिवर्तन तो नहीं होता है बल्कि कुछ क्षेत्रों में स्थितियाँ बदत्तर होती जाती हैं, आज़ादी के पहले जो भी वादे किये गये थे, स्थितियाँ बरअक्स उसके विपरीत होती चली जाती हैं । राष्ट्रकवि और राज्यसभा के सासंद डॉ.रामधारी सिंह दिनकर तक को कहना पड़ा है कि "अटका कहाँ स्वराज्य"[42] माखनलाल चतुर्वेदी इस संदर्भ में लिखते हैं उनकी यादों के तरुतण पल्लव को अब तो हम छोड़ चले । कसमें राधी के तट खाई, यमुना के तट तोड़ चले ।[43] यहाँ दो ऐतिहासिक संदर्भ दिए गये हैं – रावी के तट से कवि का अभिप्राय लाहौर से है । जहाँ सन् 1929 में कोंग्रेस का अधिवेशन हुआ था । और जिसके प्रमुख पंड़ित जवाहरलाल नेहरु थे । यमुना के तट से तात्पर्य है देश की राजधानी दिल्ली का । अर्थात् संकेतात्मक ढंग से कवि यह याद दिलाना चाहते हैं कि पंड़ित जी ने जो वादे किए थे । उनको आज़ादी के बाद वे नहीं निभा पाये । फलतः हिन्दी साहित्य में कविता, कहानी, नाटक,

उपन्यास आदि सभी विद्याओं में साठोत्तरी साहित्य की विशेषतः चर्चा होने लगी जैसे साठोत्तरी कविता, साठोत्तरी उपन्यास आदि-आदि। "साठोत्तरी" शब्द में साठ के बाद की रचना का तो संकेत है परंतु यहाँ एक मुख्य तथ्य ध्यात्व रहना चाहिए की साठ के बाद की कोई भी रचना साठोत्तरी नहीं होगी, यही उसमें साठोत्तरी मानसिकता और चेतना न हो। प्रमुख साठोत्तरी उपन्यासों में हम निम्नलिखित उपन्यासों का उल्लेख कर सकते हैं।

अमृत और विष (अमृतलाल नागर); शहर में घूमता आईना (अश्क); नदी फिर बह चली (हिमांशु श्रीवास्तव); कालाजल (गुलशेर खान साहनी); प्रेम अप्रवित्र नदी (लक्ष्मीनारायण लाल); तेरा कोटा (लक्ष्मीकांत वर्मा); अनदेखे अनजान पुल (राजेन्द्र यादव); अपने अपने अजनबी (अज्ञेय); उग्रतारा, इमरतिया (नागार्जुन); मेरी तेरी उसकी बात (यशपाल); शहीद और शोहदे (मन्मथनाथ गुप्त); अलग अलग वैतरणी (डॉ.शिवप्रसाद सिंह); रागदरबारी (श्रीलाल शुक्ल); आधा गाँव (डॉ. राही मासूम रज़ा); जल टूटता हुआ सूखता हुआ तालाब (डॉ.रामदरश मिश्र); धरती धन न अपना (जगदीशचंद्र); तमस (भीष्मसाहनी); मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी); बैशाखियाँवाली इमारतें, अठारह सूरज के पौधे (रमेश बख्शी); पचपन खम्भें लाल दीवारे, रुकोगी नहीं राधिका (उषा प्रियवंदा); डाक बंग्ला, तीसरा आदमी, आगामी अतीत (कमलेश्वर); अंधेरे बन्द कमरें (मोहन राकेश); वे दिन (निर्मल वर्मा); आपका बंटी (मन्नू भंड़ारी); एक चूहे की मौत (बदी उज्जमा); मुर्दाघर (जगदंबा प्रसाद दिक्षित) आदि-आदि।[44]

"समकालीन" शब्द का अर्थघटन दो तरह से किया जाता है - एक अर्थ तो हैं दो व्यक्तियों के एककालीक होने के संदर्भ में और दूसरा अर्थ है सम-सामायिकता (Contemporary) के संदर्भ में। यदि दो व्यक्ति किसी एक कालखण्ड़ में पाये जाते हैं तो हम उनको एक दूसरे के समकालीन कहते हैं, यथा अकबर और तुलसीदास समकालीन थे। समकालीनता का दूसरा संदर्भ समसामायिकता से है। समसामयिकता का सीधा अर्थ होगा वर्तमान समय। यदि हिन्दी साहित्य की हम बात करें तो पिछले पचीस-तीस वर्षो के साहित्य को हम समकालीन की संज्ञा दे सकते हैं। यथा समकालीन हिन्दी कविता, समकालीन हिन्दी कहानी, समकालीन हिन्दी उपन्यास, आदि-आदि। इस तरह लगभग सन् 1980 के बाद के हिन्दी उपन्यास को हम समकालीन हिन्दी उपन्यास की कोटि में

रख सकते हैं । हमारी आलोच्य लेखिका का रचनाकाल भी लगभग यही हैं । अतः मैत्रेयीपुष्पा को समकालीन हिन्दी लेखिका कह सकते हैं और वह यह कि समकालीनता की समयसीमा में आनेवाली केवल उन औपन्यासिक रचनाओं को हम समकालीन कहेंगे । जिनमें समकालीनयुग बोध, समकालीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक चिंताएँ अंतर्निहित हो । समकालीनता के युगबोध से विलग ऐसी रचना को समकालीन नहीं कहा जाएगा फिर भले ही वह इधर के पन्द्रह बीस वर्षो में लिखी गयी हो । चर्चित समकालीन हिन्दी उपन्यासों में "अनारों" (मंजुलभगत), "रेत की मछली", (कांता भारती), "नावें", "सीढ़ियाँ" (शशीप्रभा शास्त्री), "तत्सम् (राजीशेठ), कुरुकुरु स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी) मुझे चाँद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा), इदन्नमम, अल्मा कबूतरी (मैत्रेयी पुष्पा) उसके हिस्से की धूप (मृदुला गर्ग), यामिनी कथा (सूर्यबाला सिंह) रात का रिपोर्टर (निर्मल वर्मा) शहर में कर्फ्यू (विभूति नारायण राय), अपना अपना आकाश (देवेश ठाकुर), धपेल बाबा (श्यामबिहारी), आखिरी कलाम (दूधनाथ सिंह), काशी का अस्सी (काशीनाथ सिंह), सात आसमान (असगर बसाहत), काला पहाड़ (भगवान दास मोखाल), ईसुरी फाग (मैत्रेयी पुष्पा) दर्दपुर, मोबाइल (क्षमा शर्मा), बाजत अनहद ढ़ोल (मधुकर सिंह), पिछले पन्ने की औरतें (सुश्री शरद सिंह), कुइयाँजान (नासिरा शर्मा), छिन्नमस्ता, पीली कोठी (प्रभा खेतान), सलाम आखिरी (मधु कांकरिया) राह में जागनेवाले (असगर वज़ाहत), सावधान नीचे आगे है धार, जंगल जहाँ शुरु होता है (संजीव), काली सुबह का सूरज, आग-पानी आकाश (रामधारी सिंह दिनकर), वे जहाँ कैद है (प्रियवंद) अपनी सलीबे (नमिता सिंह), शहर चुप है, मुसलमान (मुशर्रफ आल्म ज़ोकी), मीरा याज्ञिक की डायरी (बिंदु भट्ट) किशोरी का आसमान (रजनी गुप्त) प्रभुति उपन्यासों की परिगणना की जा सकती है ।[45]

हिन्दी उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान :-

उत्तर आधुनिक काल में नारी विमर्श और दलित विमर्श की चर्चाएँ विशेषतः रही है । नारी विमर्श को उसकी ऊँचाईयों पर पहुँचाने में हमारी आलोच्य लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का सविशेष योगदान है । उनका जन्म 30 नवम्बर 1944 को अलीगढ़ जिले के सिर्कुरा गाँव में हुआ था । उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा झाँसी जनपद के खिल्ली गाँव में संपन्न हुई । झाँसी के बुंदेलखण्ड़ कोलेज से उन्होंने हिन्दी साहित्य में एम.ए.की उपाधि प्राप्त की

। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास लेखन का आरंभ "स्मृतिदंश" नामक उपन्यास से सन् 1990 में हुआ । आलोचकों ने उसे "उपन्यासिका" कहा हैं ।[46] उनका दूसरा उपन्यास "बेतवा बहती रही" सन् 1993 में प्रकाशित होता है। उसे भी लघु उपन्यास कहा जा सकता है।

इन दोनों उपन्यासों में पितृसत्ताक भारतीय समाज में परम्परागत पुरुष समाज द्वारा स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण लेखिका ने किया है । इस से उनकी यथार्थ की गहरी समझ प्रत्यक्ष हुई है । परंतु हिन्दी उपन्यास में उनकी विशेष पहचान उनके उपन्यास "इदन्नमम" (1994) से बनती है । प्रस्तुतः उपन्यास में उन्होंने बुंदेलखण्ड़ के प्रामाणिक और अंतरंग अनुभवों का मार्मिक चित्रण किया है । बुंदेलखण्ड़ का पहाड़ी अंचल और वहाँ के बीहड़ पहाड़ के जीवन के सामाजिक यथार्थ को गहरी मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है । "स्मृतिदंश" और "बेतवा बहती रही" में मैत्रेयीजी ने बुंदेलखण्ड़ की अहीर जाति की करुणनियति को गहरी कारुणिक संवेदना के साथ रखा है । परंतु "इदन्नमम" में लेखिका मानो इस कारुणिक सीमा का अतिक्रमण करती है। "इदन्नमम" की नायिका "मंदाकिनी" करुणनियति के नाम पर आँसू नहीं बहाती है। वह इस कठोर नियति का सामना करनेवाली एक जूझारु युवती है। वह परिवार और समाज के बंधनोंको ही नहीं तोड़ती वरण इस शोषणोन्मुखी व्यवस्था के विरुध्ध तनकर खड़ी हो जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने बुंदेलखण्ड़ की अहीरजाति की तीन पीढ़ियों की स्त्रियों के यथार्थ को उसके खुरदरेपन के साथ खुरदरी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस में इधर के ग्रामीण अंचल में फल-फूल रहे भ्रष्ट नेताओं और माफिया ठेकेदारों तथा उनके द्वारा बुंदेलखण्ड़ के आदिवासियों और ग्रामीणों के शोषण के विभिन्न स्तरों को भी लेखिका ने बेपर्द किया है। "इदन्नमम्" के उपरांत मैत्रेयी पुष्पा के चाक (1997), झूलानट (1999), अल्मा कबूतरी (2000) आदि उपन्यास उपलब्ध होते हैं । स्मृतिदंश, बेतवा बहती रही तथा "इदन्नमम्" से जहाँ अहीर समाज के यथार्थ का चित्रण है वहाँ चाक और झूलानट में खेती और काश्तकारी से जुड़े बुंदेलखण्ड़ के जाटों का चित्रण हैं। किन्तु इन दोनों उपन्यासों के केन्द्र में ग्रामीण परिवेश में उभर रही नयी नारी चेतना है। चाक में जाट समाज में नैतिक संहिताओं की रुढ़ियों में जकड़ी पुरानी पीढ़ी के क्रूरतापूर्ण हठ का यथार्थ चित्रण मिलता है। यहाँ पर नारी संहिता का उल्लंघन करनेवाली स्त्री से जीने का अधिकार छीन लेना एक मामूली बात है। इस समाज में स्त्री की हत्या कर दिए

जाने पर एक हल्की सी सुगबुहाट के अतिरिक्त और कोई विशेष हलचल नहीं होती। इसके प्रतिरोध के कोई खड़ा नहीं होता। ऐसे क्रूर, बीहड़ परिवेश में मैत्रेयीपुष्पा ने नारी नियति का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें चौकानेवाली ताज़गी है।[47]

इस समाज में न केवल जाट, अहीर जैसी पिछड़ी जाति की स्त्रियों को बल्कि दलितजाति की स्त्रियों को भी प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं है। इस तथाकथित अपराध के लिए जहाँ "रेशम" की हत्या कर दी जाती है। वहाँ गुलबंदी को जिंदा जला दिया जाता है। इस अमानवीय अपराध के विरोध में कोई भी पुरुष खड़ा होने का साहस नहीं जुटा पाता, तब उसके विरोध में खड़ीहोती है सारंग नामक एक स्त्री जो ज्यादा पढ़ी-लिखी तो नहीं हैं। परंतु, उसमें गजब की संकल्पशक्ति है। गजब की दृढ़ता है और उसके इस संकल्प को धार देता है श्रीधर प्रजापति। श्रीधर अपने आदर्श और प्रेम के चाक पर सारंग का नया चरित्र घड़ता है। इदन्नमम की "मंदा" की भाँति "सारंग" भी एक संघर्षकामी जूझारु और जीवटवाली महिला है। उसमें अन्याय से लड़ने का माद्दा है। आतताइयों का मुकाबला करने का साहस है तो नारी के अधिकारों के लिए जान तक दे देने की हिम्मत और दृढ़ता है पर सारंग में ये सब चीज़े एक कच्चे उपादान के रुप में है। श्रीधर इस कच्चे उपादान को सही रुप देने का कार्य करता है। सारंग नारी संहिता की समस्त मान्यताओं और मूल्यों को चुनौती देती हुई न केवल श्रीधर से देह सम्बन्ध स्थापित करती है बल्कि पुरुष सत्ता को चुनौती भी देती है। पुरुष सत्ता को चुनौती देने के लिए वह ग्रामपंचायत के चुनाव में प्रधानपद के लिए खड़ी होती है। सारा पुरुष समाज इसका विरोध करता है, जिसमें उसका पति भी शामिल है। वह यह सब कर पाती है क्योंकि उसने अपने गाँव में एक नारी संगठन स्थापित किया है, इसके द्वारा वह पुरुषसत्ता को चुनौती देती है। यहाँ सारंग जैसे नारीपात्र द्वारा मैत्रेयी पुष्पा यह स्थापित करती है कि जब तक सत्ता स्त्री के हाथ में नहीं आती तब तक पुरुषसमाज द्वारा उसका शोषण होता रहेगा और नारियों पर होनेवाले अत्याचार कभी समाप्त नहीं होंगे। झूलानट उपन्यास का विषय भी जाट समाज की पारिवारिक स्थितियों को उजागर करनेवाला है। इसमें सास-बहू, माँ-बेटे, पति-पत्नी और देवर-भाभी के सम्बन्धों को कुछ इस तरह चित्रित किया गया है कि बुंदेलखण्ड़ के जाट समाज की एक-एक विशेषता दृष्टिगोचर हो जाती है। जहाँ "चाक" में सारंग है। वहाँ प्रस्तुत उपन्यास में "शीलो" है। जो परम्परागत जीवन

मूल्यों को चुनौती देती है। इन उपन्यासों के अलावा "विज़न" और "अगनपंखी" नामक दो उपन्यास और है। परंतु मैत्रेयी जी की इधर की सशक्त रचनाओं में "अल्मा कबूतरी" है। इसका फलक विशाल एवम् वैविध्य पूर्ण है। इस उपन्यास में मैत्रेयी ने नयी जमीन को तोड़ा है। जिस प्रकार डॉ.रांगेय राघव ने "कब तक पुकारुँ" उपन्यास में राजस्थान के "करनट" नामक जरायन लोगों के जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया है; ठीक उसी प्रकार अल्माकबूतरी में मैत्रेयीजीने "कबूतरा नामक" जरायनपेशा जाति की नायिका "अल्मा" को प्रस्तुत किया है। भारत में आज भी कुछ ऐसी जातियाँ है जिनके पास न अपनी जमीन है न घर है न गाँव है। पुराना सरकारी रेकोर्ड इन जातियों को अपराधकर्मी मानता था और आज भी सभ्य समाज के बहुत से लोग उनको उसी नजरिये से देखते हैं। आज़ादी के बाद वैधानिक दृष्टि से उन्हें सम्मान नागरिकता का अधिकार जरुर प्राप्त हो गया है परंतु समानजनक साधनों से जीविकोपार्जन का कोई रास्ता न होने से पुरुषवर्ग अपराधकर्म और स्त्रियाँ देह व्यापार के लिए विवश होती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतराजाति के जीवन को यथार्थ धरातल पर लेखिका ने चित्रित किया है जो अपनी वंश परम्परा रानी पद्मिनी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंगरक्षिका "झलकारी बाई" से जोड़ते है। कबूतरा समाज के लोग अन्य सभ्य समाज के लोग को "कज्जा" कहकर पुकारते है और उनको हिकारत की नजर से देखते है। इस प्रकार कब्जा और कबूतराओंकी मुठभेड उपन्यास का केन्द्रीय विषय है। परंतु अनेक संघर्ष में अधिक नुकसान कबूतराओं को ही होता है। भूरी उपन्यास का एक सशक्त नारी पात्र है। वह कज्जा समाज से टक्कर लेती है। अपने शरीर का सौदा करके भी वह अपने बेटे को पढ़ा लिखाकर इस दलदल से बाहर निकालना चाहती है। परंतु ऐसा नहीं हो पाता उसका बेटा कबूतरा बनकर ही जीने के लिए अभिशप्त है। शनैः शनैः उसकी संघर्ष क्षमता खत्म हो जाती है और वह पुलिस का दलाल बन जाता है। लोग उसे डाकू बेटाराम के नाम से जानते हैं। पुलिस द्वारा प्रायोजित एक मुठभेड़ में वह मारा जाता है। इस प्रकार अल्मा कबूतरी पराजित मानवता की कथा है। उसमें सभ्य कहे जानेवाले असभ्य और बर्बर समाज का बेलाग चित्रण है। अल्मा की कहानी उस स्थिति के प्रति नारी के विद्रोह की कहानी है। अल्मा अपने पिता के साथ रहते हुए राणा के बच्चे को "मर्द" बनाती है, इतना ही नहीं कुमारी माँ बनने का साहस भी बताती है। समाज के आततायियों को वह साहस

के साथ झेलती है पर साथ ही साथ सत्ता प्राप्ति द्वारा अपने समाज को इस दलदल से बाहर लाने का प्रयत्न करती है। भूरी जहाँ असफल रहती है अल्मा इसमें एक हद तक सफल होती है। विधान सभा चुनाव के लिए एक प्रत्याशी के रुप में वह खड़ी हो जाती है और उपन्यास के अन्त मे लेखिका ने सांकेतिक किया है कि वह इस चुनाव में जीत पाएगी। इस प्रकार गोपाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत उपन्यास "एक टुकड़ा इतिहास" की नायिका जहाँ राजनीति में उतरती है। ठीक उसी तरह अल्मा भी राजनीति के क्षेत्र में आती है। डॉ. गोपालराय इसे "नारीवाद" को लहकाने का प्रयास कहते है और इस पूरे प्रसंग को आरोपित मानते हैं।[48] परंतु यदि हम वर्तमान राजनीतिक पटल पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि पिछड़ी जाति की कुछ औरतें राजनीति में अपना कद निरंतर बढ़ाने में सफल हुई हैं उत्तर प्रदेश की मुख्यप्रधान मायावती इसका ज्वलंत उदाहरण हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने भारतीय ग्रामीण आंचलिक क्षेत्रकी साहसी और जुझारु छोटी जाति की औरतों के द्वारा नारी विमर्श को एक नया आयाम प्रदान किया है। भयंकर शोषण, अराजकता और अत्याचारों की आँधी के बीच भी मैत्रेयी की नारियाँ हार नहीं मानती हैं। वे टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं। परंतु अपनी अस्मिता की एक स्थायी मुद्रा छोड़ जाती हैं। मैत्रेयी के इस नारी विमर्श के सामने नगरीय जीवन की सुशिक्षित सुविधा भोगी महिलाओं का संघर्ष और विमर्श कुछ फीका लगता है। केवल योनिसूचिता ही सत्तीत्व का लक्षण नहीं है, परतुं दरिंदो के बीच में मर्दानगीपूर्वक लड़ना भी सतीत्व है। सुरेन्द्रवर्मा कृत उपन्यास "मुझे चाँद चाहिए" की नायिका वर्षावषिष्ठ भी कुमारी माँ बनने का साहस दिखाती है। परंतु अल्मा और उसकी स्थितियों में जमीन-आसमान का फर्क है। मैत्रेयी की ग्रामीण नारियों के चरित्र से गुजरते हुए मंजुल भगत की "अनारो" और भीष्मसाहनी की "बंसती" का स्मरण बरबस हो जाता है। मटियानीजी की कहानियों और उपन्यासों में जो ग्रामीण अंचल की महिलाओं का (नगरीय अंचल में छोटे-छोटे काम करनेवाली पिछड़ी जाति की महिलाएँ) जूझारूपन है वह यहाँ दृष्टिगत होता है। जिस तरह मुंशी प्रेमचंद के उल्लेख बिना हिन्दी उपन्यास की चर्चा अर्थहीन है ठीक उसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के जिक्र के बिना नारी विमर्श की दास्तान भी अधूरी सी ही लगती है।

निष्कर्ष :-

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरांत हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहर्षतया पहुँच सकते है।

(1) उपन्यास की तमाम परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उपन्यास एक यथार्थधर्मी विद्या है। उपन्यास के सभी तत्वों में यथार्थता का विशेष आग्रह पाया जाता है।

(2) उपन्यास का उद्‌भव "रेनेसा" के उपरांत युरोपीय देशों में हुआ। भारतीय भाषाओं में उसका आर्विभाव नवजागरण के उपरांत 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पाया जाता है। हिन्दी का प्रथम उपन्यास सन् 1878 में प्रकाशित पंडित श्रद्धाराम फुल्लोरी का भाग्यवती उपन्यास है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास ने लगभग 132 वर्ष की यात्रातय की है।

(3) हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुंशी प्रेमचंद द्वारा प्राप्त हुआ। अतः उपन्यास के विकासयात्रा में अनेक नाम को केन्द्रस्थ करना स्वाभाविक समझा जाएगा। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा को मुख्यतया तीन शीर्षकों में विभक्त किया गया है। पूर्व प्रेमचंदकाल – प्रेमचंद काल – प्रेमचंदोत्तरकाल।

(4) पूर्व प्रेमचंदकाल सन् 1878 से सन् 1918 तक माना जाता है। सन् 1918 से 1936 प्रेमचंदकाल है और 1936 से 1947 तक प्रेमचंदोत्तरकाल माना गया है।

(5) सन् 1947 को हमारा देश स्वाधीन हुआ। प्रारंभ के कुछ वर्ष आशा, उल्लास-उमंग में व्यतीत हो जाते है। परंतु शनैः शनैः मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता है। क्योंकि स्वाधीनता से जो हमारी अपेक्षाएँ थी वे संतुष्ट नहीं होती और स्वाधीनता एक छलावा मात्र बनकर रह जाती है। इस मोहभंग की स्थिति का आलेखन साठोत्तर उपन्यासकारों ने किया है। अतः प्रेमचंदोत्तर काल को सन् 1936 से 1960 तक माना गया है।

(6) साठोत्तरी उपन्यास की परिसीमा सन् 1980-85 तक मानी गयी है। उसके बाद के औपन्यासिक विकास को समकालीन उपन्यास के अंतर्गत रखा गया है। अतः

सन् 1980 से अध्यावती तक के कालखण्ड़ को हम समकालीन उपन्यास की संज्ञा दे सकते हैं।

(7) इन 132 वर्षों में हमें उपन्यास के विभिन्न रुपबंध प्राप्त होते हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं – सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास, व्यंग्यात्मक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास आदि-आदि।

(8) पूर्वप्रेमचंदकाल में हमें मुख्यतया पाँच औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ मिलती है। परंतु उनमें से तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों को अस्तरीय एवम् असाहित्यिक माना गया है, और अनुदित उपन्यास अपनी मूल भाषा के धरोहर होते हैं अतः पूर्व प्रेमचंदकाल में हमें केवल दो औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं – सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास।

(9) पूर्व प्रेमचंदकाल का औपन्यासिक साहित्य स्थूल कथावस्तु प्रधान, मनोरंजन प्रधान, उपदेश प्रधान और अपरिपक्व माना गया है। चरित्र चित्रण की प्रवृत्ति उसमें कम दिखायी पड़ती है।

(10) उपन्यास में चरित्रचित्रण को प्रधानता देने का श्रेय मुंशी प्रेमचंद को जाता है। मानव चरित्र की पहचान करानेवाले हिन्दी के वे प्रथम उपन्यासकार है। अतः कह सकते है कि सचमुच के सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात मुंशी प्रेमचंद द्वारा हुआ।

(11) सचमुच ऐतिहासिक उपन्यास का सूत्रपात भी प्रेमचंदयुग में ही वृंदावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा हुआ।

(12) राजनीतिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और समाजवादी उपन्यास का सूत्रपात प्रेमचंदयुग में हुआ। किन्तु उनका विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में पाया जाता है।

(13) प्रेमचंदकाल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन के अतिरिक्त यशपाल, महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. शिवसागर मिश्र आदि को परिगणित कर सकते हैं। परंतु इतिहास

विषयक उनकी दृष्टियों में विभिन्नता पायी जाती है । जहाँ आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने "इतिहासरस" की बात है वहाँ वृंदावनलाल वर्मा में "इतिहास की पुनर्व्याख्या" का प्रयास देखा जा सकता है । यशपाल एवम् महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन की इतिहास दृष्टि मार्क्सवादी विचारों से आप्लावित है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के राजनीतिक इतिहास की तुलना में सांस्कृतिक इतिहास को अधिक महत्व देते हैं ।

(14) प्रेमचंदोत्तरकाल में जो औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं । उनमें आंचलिक उपन्यास पौराणिक उपन्यास और व्यंग्यात्मक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास प्रमुख हैं । आंचलिक उपन्यास में "अंचल" को उसकी समग्रता में प्रस्तुत किया जाता है । पौराणिक उपन्यास पौराणिक वृत्तांत पर आधारित होते हैं और व्यंग्यात्मक उपन्यासों में आध्यन्त व्यंग्यात्मक दृष्टि की प्रचुरता होती है ।

(15) आंचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र अवस्थी, उदयशंकर भट्ट, डॉ.शिवप्रसाद सिंह, शैलेष मटियानी आदि के नाम रेखाकिंत किये जा सकते हैं । पौराणिक उपन्यासकारों में डॉ.नरेन्द्र कोहली, डॉ.भगवतीशरण मिश्र, डॉ. भगवानसिंह, डॉ.बच्चन सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं । व्यंग्यात्मक उपन्यासकारों में श्री लालशुक्ल, हिमांशु श्रीवास्तव, बदी उज्जमां, डॉ.राही मासूम रज़ा आदि के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं । राजनीतिक उपन्यासकारों में डॉ.भगवती चरण वर्मा, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, शमशेरसिंह नरुला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

(16) मैत्रेयीपुष्पा तक की उपन्यासयात्रा में निम्नलिखित उपन्यासों को सीमाचिन्ह रुप कहे जा सकते हैं । सेवासदन, रंगभूमि, गबन, निर्मला, गोदान (प्रेमचंद), बुधवा की बेटी, घंटा और चंद हसीनों के खतुत (उग्र), गिरती दीवारें, शहर में घूमता आईना (उपेन्द्र नाथ अश्क), बाणभट्ट की आत्मकथा (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) मृगनयनी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई (वृंदावनलाल वर्मा), जय सोमनाथ, वैशाली की नगरवधू (आचार्य चतुरसेन), दिव्या, अमीता (यशपाल), जय यौध्येय, सिंह सेनापति (राहुल सांस्कृत्यायन) अमृत और विष, बूंद और समुद्र, नाच्यौं बहुत गुपाल (अमृत लाल नागर) टेढ़े मेढ़े रास्ते, भूले बिसरे चित्र, सबहिं

नचावत रामगोसाई (भगवती चरण वर्मा) हौलदार, चिट्ठीरसेन, चौथी मुट्ठी, आकाश कितना अनंत है (शैलेष मटियानी), लोहे के पंख, नदी फिर बह चली (हिमांशु श्रीवास्तव), झूटा-सच (यशपाल), सती मैया का चौरा (भैरवप्रसाद गुप्त), रागदरबारी (श्रीलाल शुक्ल) आधा गाँव (डॉ.राही मासूम रज़ा), काला जल, (बूल शेरखान साहनी) अलग-अलग वैतरणी (डॉ.शिवप्रसाद सिंह) जल टूटता हुआ (डॉ.रामदरश मिश्र) सारा आकाश (राजेन्द्र यादव) सूरज का सातवाँ घोड़ा (धर्मवीर भारती) आगामी अतीत, तीसरा आदमी (कमलेश्वर) अंधेरे बंद कमरें (मोहन राकेश) आपका बंटी (मन्नू भंडारी) सूरजमुखी अंधेरे के (मित्रो मरजानी), कृष्णा सोबती, वे दिन (निर्मल वर्मा), मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी), मुर्दाघर (जगदंबा प्रसाद दीक्षित)

(17) मैत्रेयी पुष्पा का रचनाकाल समकालीन हिन्दी उपन्यास का है। प्रमुख समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अनारों, रेत की मछली, तत्सम्, कुरु कुरु स्वाहा, मुझे चाँद चाहिए, इदन्नमम् , अल्मा कबूतरी, चित्तकोबरा, उसके हिस्से की धूप, यामिनी कथा,-शहर में कर्फ्यू, आखिरी कलाम, ईसूरी फाग, दर्दपुर, पिछले पन्ने की औरतें, कुईयाँजान, सलाम आखिरी, धार, जंगल जहाँ शुरु होता है, आग-पानी-आकाश, वे जहाँ कैद हैं। आदि की गणना कर सकते हैं।

(18) हिन्दी कथा साहित्य विशेषतः उपन्यास साहित्य में सन् साठ के बाद महिला लेखिकाओं की विशेष भागीदारी रही हैं। इन महिला लेखिकाओं में कृष्णासोबती, मन्नूभंडारी, उषा प्रियवंदा, निरुपमा सेवती, मेहरुनिशा परवेज़, सूर्यबाला सिंह, मंजुल भगत, ममता कालियाँ, मालती जोशी, शशिप्रभा शास्त्री, दीप्ती खण्ड़ेलवाल, मृदुलागर्ग, चित्रा मृदुगल, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा, क्षमा शर्मा, शरद सिंह, मधुकाकरिया, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह, प्रभुति का योगदान उल्लेखनीय कहा जा सकता हैं । नारीविमर्श को अग्रसरित करने में इनका सविशेष योगदान रहा है। इस दिशा में प्रभाखेतान तथा मैत्रेयीपुष्पा के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में हमें बुंदेलखण्ड़ के ग्रामीण अंचल की तेजतर्रार, जूझारु संघर्ष-कर्मी, जीवटवाली महिलाएँ उपलब्ध

होती हैं । उन्होंने ग्रामीणक्षेत्र की निम्नजाति की महिलाओं के जुझारुपन को भी अभिव्यक्ति दी है । अल्मा कबूतरी उसका ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

संदर्भ संकेतः

(१) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभावः डॉ.भारतभूषण अग्रवालः पृ.23

(२) वही. पृ.21

(३) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचंद्र शुक्लः पृ.434

(४) दृष्टव्यः परीक्षागुरु : लाला श्रीनिवासदास और भूमिका ।

(५) दृष्टव्यः आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रुपों का चित्रण : डॉ.मोहम्मद अज़हर ढ़ेरीवालाः पृ.24

(६) दृष्टव्यः भारतीय नवलकथा भाग-1 : डॉ.रमणलाल जोशीः पृ.6-7

(७) Sec : Novel : New English Dictionary

(८) Aspects of the Novel – E.M.Forster – P:94

(९) Novel and the People: Ralphox : P.20

(१०) Writers at work : First series: Irawal fert P:8

(११) उध्दृत द्वारा : डॉ.पारुकांत देसाई : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास " पृ:56-57

(१२) वही :92

(१३) साहित्यालोचन : पृ.135

(१४) कुछ विचार : प्रेमचंद : पृ.46

(१५) उपन्यास शीर्षक लेखक : साहित्य संदेश मार्च 1940

(१६) हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 : पृ.153

(१७) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डॉ.एस.एन.गणेशन : पृ.29

(१८) विस्तार के लिए दृष्टव्य : प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास : सामाजिक उपन्यास नामक तृतीय अध्याय : पृ.79 से 198

(१९) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पारुकांत देसाई :पृ.128

(२०) Writer at work, first series : 1958 : P.60

(२१) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डॉ. भारतभूषण अग्रवाल : पृ.24

(२२) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.71

(२३) आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान : डॉ.देवराज : पृ.14

(२४) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.131

(२५) दृष्टव्यः "हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा" पृ.222-223

(२६) दृष्टव्यः "रामायण ओर महाभारत के कथावस्तु पर आधारित डॉ.नरेन्द्र कोहली के उपन्यास : एक अनुशीलन" (शोध प्रबंध) डॉ.राजेश चौहाण : पृ.44-50

(२७) आधुनिक समुद्रशास्त्र (Oscanology) के अनुसार समुद्र में स्थितिया उसको कहते है जहाँ समुद्र गहरा न होकर उथला होता हैं।

(२८) क्षितिज नवलकथा विशेषांक : संपादक : सुरेश जोशी

(२९) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डॉ.गोपालराय : पृ.387

(३०) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ.70

(३१) दृष्टव्यः वहीः पृ.73

(३२) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययनः डॉ.एस.एन.गणेशनः पृ.58

(३३) दृष्टव्यः युगनिर्माता प्रेमचंद : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.28-29

(३४) दृष्टव्यः वहीं : पृ.32

(३५) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पी.के.देसाई : पृ.108 से 115

(३६) वही : 127 से 130

(३७) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पी.के.देसाई : पृ.115 से 119

(३८) दृष्टव्यः वही : पृ.120 से 127

(३९) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.62

(४०) दृष्टव्यः वही : पृ.62-63

(४१) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य का इतिहास : डॉ.गोपाल राय : पृ.348-350

(४२) दिनकरजी की एक कविता का शीर्षक

(४३) माखनलाल चर्तुवेदी की "रावी का तट यमुना का तट" शीर्षक कविता।

(४४) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पी.के.देसाई : पृ.10

(४५) दृष्टव्यः "हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वैश्याजीवन : एक अध्ययन" (शोधप्रबंध) डॉ.प्यारेलाल कहार : पृ.सं.43-44

(४६) दृष्टव्यः "हिन्दी उपन्यास का इतिहास": डॉ.गोपालराय – पृ.387

(४७) दृष्टव्यः वही : पृ.388

(४८) डॉ.गोपालराय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : पृ.390